सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

वर्ष : 44, अंक : 4
जुलाई : 2011

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सवॉई-283202 (आगरा) उ.प्र.

अमृत कण

माता च कमला देवी पिता देवो जनार्दनः।
बान्धवा विष्णुभक्ताश्च स्वदेशो भुवनत्रयम्।।

(चाणक्यनीति दर्पण)

अर्थात् लक्ष्मी देवी जिसकी माँ है, सर्वव्यापक आनन्द दाता परमेश्वर जिसका पिता है और परमेश्वर के भक्त जिसके बन्धु हैं ऐसे मनुष्य के लिए तीनों लोक ही अपने देश के समान हैं।

* * *

अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिर पैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं ह्रीरचापलम्।।

(श्रीमद् भगवद्गीता)

अर्थात् मन, वचन, कर्म से किसी को कष्ट न देना, यथार्थ और मधुर वचन बोलना, अपने प्रति अपकार करने वाले पर भी क्रोध न करना, चित्त में शान्ति रखना, किसी की निन्दा न करना, सबके प्रति दयाभाव रखना, विषयों के प्रति आसक्ति व प्रीति न करना, लोक और शास्त्र की मर्यादा के विरुद्ध आचरण में लज्जा करना और व्यर्थ काम न करना – ये सब सच्चरित्रता के लक्षण हैं।

* * *

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः।।

(ऋग्वेद)

हम कानों से शुभ विचार ही सुनें, आँखों से शुभ दृश्य ही देखें। स्वस्थ एवं सबल शरीर तथा शुद्ध मन से प्रभु की स्तुति करते हुए, विद्वानों की मर्यादा से युक्त कल्याणकारी आयु (जीवन) को भली भाँति प्राप्त करें।

* * *

दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः।
दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च।।

(मनुस्मृति)

दुराचरण करने वाले चरित्रहीन व्यक्ति की सब जगह निन्दा होती है, वह सदा दुःखी व रोगी रहता है और पूरी आयु न भोग कर अकाल मौत मरता है (अर्थात् अपनी पूरी आयु न भोग कर रोगों के कारण क्षीण-काय होने से अकाल मौत मरता है वरना पूरी आयु भोगता)।

* * *

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :– शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली "सिद्धयोग" नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 44 अंक : 4

यावत्स्वस्थ मिदं शरीरमरुजं यावज्जरा दूरतो,
या वच्चेन्द्रिय शक्तिर प्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः।
आत्म श्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान,
सन्दीप्ते भवनेतु कूपखननं प्रत्युद्यमः की दृशः।।

जब तक शरीर स्वस्थ और निरोग है, जब तक वृद्धावस्था दूर है, जब तक इन्द्रियां शक्तिशाली हैं, जब तक प्राण शक्ति क्षीण नहीं हुई है, तभी तक बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिए कि आत्मकल्याण हेतु तत्परतापूर्वक भरपूर प्रयत्न करता रहे वरना घर में आग लग जाने पर कुआं खोदने से क्या लाभ?

जुलाई 2011

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवाई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY
Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :
योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

अनुक्रमणिका

1.	**विशेष लेख** – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	**सम्पादकीय**	11
3.	**योग में क्रोध नहीं** – डॉ. जे.पी. शर्मा	14
4.	**श्री सिद्धगुफा की शताब्दी** – अवनीश भटनागर	19
5.	**योग क्षेम वहाम्यहम्** – कृष्ण कुमार पाण्डेय	23
6.	**प्राण क्या है?** – रघुवीर चन्द ठाकुर	26
7.	**गुरु पूनम महापर्व** – बाबा कानपुरी	28
8.	**भावगीत–विनय** – श्रीमती शारदा सिसौदिया	29
9.	**श्री गुरु चरणों में गिरिजेश नन्दन शर्मा** – केशवदेव उपाध्याय	30
10.	**श्री कामाख्या यात्रा में सत्संग लाभ** – डॉ. विजय सिंह	34
11.	**श्री गीतामृत पदावली** – डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी	38

एक प्रति	: रु. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 140.00
द्विवार्षिक	: रु. 270.00
आजीवन (10 वर्षीय अवधि)	: रु. 850.00

● *हमारा विशेष लेख*

गुरुदेव क्या?

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

श्रद्धा और निष्ठा

हमारे शास्त्रों में विविध प्रकार की उपासनाओं का वर्णन मिलता है, वैसे तो शास्त्रीय नियम है–

मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना

अर्थात् संसार में जन्म लेने वाले सभी प्राणियों की मतियें भिन्न–भिन्न होती हैं और अपनी–अपनी मति के अनुसार ही हर व्यक्ति उपासना के मार्ग में निकलता है। किंतु फिर भी एक प्रश्न हर उपासक के सामने बना रहा करता है। वह कौन हैं और कितने शक्तिशाली हैं। साधारण रूप से इसका उपसंहार तो इसी श्लोक के अन्दर हो जाता है।

मन्नाथस्त्रिजगन्नाथो मद्गुरुस्त्रिजगद्गुरु।
ममात्मा सर्वभूतात्मा तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

अर्थात् साधक को चाहिए वह अपने इष्टदेव को सकल अंड–ब्रह्माण्डों का नायक समझे और अपने गुरुदेव को तीन लोकों का गुरु समझे। और प्राणी मात्र के अन्दर ओत–प्रोत रहने वाले दिव्य चेतन को अपना ही आत्मा माने। यह साधक की अपनी धारणा है–

श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।

अर्थात् परमात्मा का स्वरूप श्रद्धामय है और जैसी जिसकी श्रद्धा होती है वैसा ही बन जाता है। भारतवर्ष का श्रद्धामय इतिहास यह प्रमाणित करता है कि श्रद्धावान पुरुषों की अपनी श्रद्धा के बल से पत्थरों से ईश्वर को प्रगट कर लिया। धन्ना जाट आदि की कथायें भक्त चरित्रों के अन्दर बड़े उत्साह के साथ गाई जाती हैं। धन्ना जाट काश्त करने वाला साधारण व्यक्ति था उसको केवल मात्र मन के बहलावे के लिए किसी पंडित ने कह दिया कि तुम्हारे हाथ में जो पत्थर का टुकड़ा है उसके अन्दर श्री श्यामसुन्दर छिपे हुए हैं। उसके मन में पूर्ण परिपक्व निष्ठा बनी और उस पत्थर के टुकड़े में से जगदात्मा अखिल ब्रह्माण्ड नायक श्रीकृष्ण को ढूंढ निकाला। यह श्रद्धा का ही उत्तमोत्तम परिणाम है। एक धन्ना के अतिरिक्त और भी अनन्त कथायें हैं जिन्होंने श्रद्धा के आधार पर सब कुछ पा लिया। इसलिए 'मन्नाथस्त्रिजगन्नाथो' की धारणा करके साधक अपने इष्टदेव को सर्वथा पूज्य

मान ही सकता है।

तात्विक बात

किन्तु तात्विक बात क्या है? इसके विषय में कुछ विचार कर लेना परम आवश्यक है। जिस समय हम रामायण को उठा कर अध्ययन करते है तो उस समय देखते है कि भगवान शिव के आराध्यदेव श्रीरामचन्द्र जी हैं और इसके लिए प्रबल प्रमाण है सती का वह उपाख्यान जिसके कारण भगवान सदा शिव ने उसका परित्याग कर दिया था। उसका अपराध इतना ही था कि उसने भगवान शिव की अर्धांगिनी होते हुए श्री रामचन्द्र जी के ईशत्व की परीक्षा के लिए कृत्रिम सीता का रूप बना लिया। भगवान शिव को यह स्वीकार नहीं हुआ और उन्होंने सती का परित्याग इसलिए कर दिया क्योंकि उसने उनके आराध्यदेव श्रीराम की पत्नी सीता का रूप धारण किया जिसको वह मातृ भावना से देखते थे।

इस छोटी सी गलती का इतना कटु परिणाम भगवती सती को भोगना पड़ा कि जब तक उन्हें पार्वती रूप से भगवान शिव ने अंगीकार नहीं किया तब तक उन्हें घोर तप करना पड़ा और जब तक सती का शरीर रहा तब तक वे परित्यक्ता ही रहीं। अर्द्धांगनी रूप से उनका मिलन फिर सती स्वरूप में न होकर दूसरा जन्म धारण करने पर पार्वती रूप से ही हुआ। पुराणों की इस कथा से यह आभासित होता है कि श्रीराम भगवान शिव के आराध्यदेव हैं। उधर पद्मपुराणान्तर्गत दूसरा प्रकरण मिलता है। भगवान श्रीराम को, जब कि सीता हरण हो गया, घोर दुःख हुआ व उन्होंने दण्डकारण्य में रह कर भगवान सदाशिव का सहस्त्र नाम जपते हुए व पर्णाहार करते हुए या केवल जल का ही आधार लेकर वर्षों तक घोर तप किया। परिणामस्वरूप भगवान सदाशिव प्रगट हुए। भगवान शिव के प्रगट होने का विशद वर्णन शिव गीता में मिलता है। पहले एक बड़ा भारी महान शब्द सुनाई दिया। धीरे-धीरे प्रकाश हुआ और उस महान प्रकाश के अन्दर जगदम्बा पार्वती सहित भगवान सदाशिव वृषभ रूप विराजमान थे। भगवान सदाशिव ने प्रगट ही करके श्रीराम को पाशुपत अस्त्र प्रदान किया और उनको आश्वासन देते हुए कहा:

इदं पाशुपतं दिव्यं प्रगृह्यण रघूद्भव।
एतदासाद्य पौलस्त्यं जहि मा शोकमर्हसि।

अर्थात् हे राम तुम यह पाशुपत अस्त्र ग्रहण करो इसको लेकर तुम रावण को मारो तुम चिन्ता के लायक नहीं हो। परिणामस्वरूप भगवान शिव से वरदान प्राप्त कर श्री राम ने लंका पर चढ़ाई की और घोर युद्ध के साथ रावण को पराजित करके व उसके मृत हो जाने के बाद उसके भाई विभीषण को राज्य सौंप कर सीता को वापस ले आये। जिस समय श्री राम ने लंका पर चढ़ाई की और सेतुबन्ध करना आरम्भ किया उससे पहिले उन्होंने अपने आराध्यदेव भगवान सदा शिव की प्रतिष्ठा समुद्र किनारे की। और भगवान

शिव की आराधना करके उनसे आशीर्वाद प्राप्त कर लंका पर चढ़ाई की और संग्राम में विजय प्राप्त की। लंका के संग्राम के बाद जिस समय श्रीराम पुष्पक विमान से लौट रहे थे उस समय अपनी सह–धर्मिणी सीता को अपने वनवास में रहने के स्थानों को दिखलाया। उसमें विशेष रूप से भगवान शिव की जहां आराधना की उस स्थान को दिखाते हुए श्रीराम ने कहा – अत्र पूर्व महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः' अर्थात् हे सीता यह वह स्थान है जहाँ पर भगवान महादेव जी ने मुझ पर कृपा की थी। इस प्रकरण के पढ़ने से यह पूरी तरह से आभासित होता है कि भगवान सदा शिव श्री राम के आराध्य देव हैं। इसी प्रकार जब हम श्रीकृष्ण चरित्र का अध्ययन करते हैं तो उनके गोकुल में बाल लीला के समय में भगवान शिव दर्शनार्थ आते हैं और अपना इष्टदेव बतला करके यशोदा जी से प्रार्थना करके उनके दर्शन करते हैं और उधर द्वारका वास के समय में रुक्मिणी से पुत्रोत्पत्ति के निमित्त उपमन्यु ऋषि से दीक्षा ग्रहण करके भगवान श्रीकृष्ण ने बारह साल तक घोर तप किया। परिणाम स्वरूप उनके घर में रुक्मिणी के गर्भ से प्रद्युम्न का जन्म हुआ। इसके साथ–साथ भगवान श्रीकृष्ण द्वारा नित्य नियम से भगवान शिव द्वारा पार्थिव पूजन का वर्णन पुराणों में मिलता है।

एक बार माध्यान्हिक नित्यकर्म में भगवान श्रीकृष्ण लगे हुए थे उसी समय मार्कण्डेय आदि मुनि भगवान श्रीकृष्ण के दर्शनार्थ आये। उस समय श्रीकृष्ण भगवान शिव का पूजन कर रहे थे। मार्कण्डेय आदि मुनियों ने श्रीकृष्ण की शिव उपासना को देखकर बड़े आश्चर्य के साथ श्रीकृष्ण से ही यह प्रश्न किया कि

त्वं विष्णुः कमलाकान्तः परमात्मा जगद्गुरु।
तव पूज्यः कथं शम्भूरेतत् सर्वं वदास्मान्।।

अर्थात् हे श्रीकृष्ण तुम स्वयं परमात्मा जगत गुरु विष्णु हो तुम्हारे पूज्य भगवान शिव किस प्रकार से हैं यह बात हमारी समझ में नहीं आई इसलिए हमें स्पष्ट खोलकर समझाओ। भगवान सदा शिव तुम्हारा आराध्यदेव किस प्रका ?

भगवान श्रीकृष्ण ने इसका उत्तर दिया। हे मुनि मार्कण्डेय यद्यपि तुम तात्विको बात को जानते हो फिर भी तुमने लोक हित के विचार से जो प्रश्न किया है उसका उत्तर मैं तुम्हें समझाकर बतलाता हूँ। जिस परमानन्द ज्योति की मैं आराधना करता हूँ उसका वर्णन सावधान होकर सुनो।

ज्योतिर्यव परमानन्दं सावधानमातिः श्रृंगाः।
वामांगाः वत्तस्य सोऽहं विष्णुरिति स्मृतः।।
जनयामा सचतारम् दक्षिणांगात्सदाशिव।।
मध्यतो रुद्रमीशानं कालात्मा परमेश्वरः।
तपस्सपन्तु भायत्सा इति तानब्रवीच्छिव।।

अर्थात् जिस परमानन्द ज्योति की मैं आराधना करता हूँ वह भगवान महादेव जी हैं मैं उनके वाम भाग से पैदा हुआ इसलिए विष्णु नाम से विख्यात हूँ। उन्होंने अपने दक्षिण भाग से ब्रह्मा जी को पैदा किया और मध्य से रुद्र जी को पैदा किया और हम सब की उत्पत्ति हो जाने के बाद भगवान महादेव जी ने आज्ञा दी कि हे पुत्रों तुम तप करो। इस लेख से यह मालूम पड़ता है कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव तीनों के मूल कारण कोई और ही है और वह सत्ता उनसे आगे की है।

श्री देवी भागवत में

श्री देवी भागवत आदि पुराणों के अन्दर कुछ और ही प्रकार की कथाएँ मिलती हैं।

एक बार ब्रह्मा विष्णु शिव तीनों देव घूमते हुए किसी दिव्य–लोक में जा निकले वह लोक बड़ा दिव्य था जिसको ये लोग पहले से जानते ही नहीं थे। जब उस लोक से ये आगे बढ़ते ही चले गये तो एक दिव्य मन्दिर के अन्दर दिव्य सिंहासन पर विराजमान अष्ट भुजी महामाया भगवती दुर्गा को देखा। ज्यों ही इन सब ने भगवती का दर्शन प्राप्त किया तो ये सब युवती स्त्रियाँ बन गये। जब अपने आप की यह स्थिति देखी तो स्वयं विष्णु भगवान ने हाथ जोड़ कर अत्यन्त विनयपूर्वक देवी की स्तुति की। इन सबने हाथ जोड़कर कहा कि हे माता!

ज्ञातंमयाखिलमिदं त्वयि सन्निविष्टम्।
तत्तोऽस्य सम्भवलयअपि मातरस्य।।
अस्माभिस्त्रभुवने हरि रन्यएव दृष्ट।
शिवः कमलजः प्रथितप्रभावः।
अन्येषु भुवनेषु न सन्ति किन्ने।
नाविदम् देवि तव सुप्रभावम्।।

अर्थात् हे माता! हमने यहाँ आ करके यह जान लिया चूंकि सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय तुम से ही होती है। हमने इसी लोक में आ करके हरि और ही देखे। इसी प्रकार शिव और ब्रह्मा और ही थे। इससे यह ज्ञान होता है और भुवनों में भी ब्रह्मा विष्णु शिव और–और ही होंगे। हे माता हम तेरे महान प्रभावों को नहीं जान सके। इस प्रकरण से यह ज्ञात होता है कि ब्रह्मा विष्णु शिव से भी परे और तत्व है। जिस तत्व की ये स्वयं भी आराधना करते हों। श्री महाभारत में युद्ध के उपरान्त गीता के प्रकरण में अर्जुन ने भगवान कृष्ण से प्रार्थना की कि हे प्रभो आपने युद्ध के समय जो गीता सुनाई थी वह अब मुझे पूरी–पूरी तरह याद नहीं है इसलिए कृपा करके उस गीता का उपदेश मुझे दोबारा कर दीजिए। अर्जुन का ऐसा प्रश्न करने के बाद भगवान श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया कि अर्जुन तुमने यह बड़ी भारी भूल की कि उस परमोपदेश को भुला दिया है।

न शक्यस्तन्मया भूयः तथा वक्तुंह्यशेषतः।
परंहि ब्रह्म कथितं योग युक्तेन तन्मया।।

अर्जुन तुमने उस उपदेश को भुला दिया यह बड़ी भारी भूल की। वह उपदेश मैंने योग युक्त होकर दिया था। इसलिए वह स्वयं पार ब्रह्म का ही उपदेश था। अतः वह पवित्र ज्ञान जैसा का तैसा मुझसे भी नहीं कहा जा सकता।

इस प्रकरण को पढ़कर के भी कृष्ण का योग युक्त होकर उपदेश देना स्थिति का तारतम्य बतलाता है। इन सभी प्रकरणों से यह प्रगट होता है कि श्रीराम के रूप में श्री शिव ने व कभी शिव के रूप में श्री राम ने किसी और ही तत्व की उपासना की थी जो परात्पर है और सर्वत्तो वन्द्य हैं सभी ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवता उसी पार–ब्रह्म के प्रतीक मात्र हैं। और यह सत्ता इनसे भी परे है। हमारे शास्त्रों में व पुराने इतिहास में श्री गुरुदेव की बहुत बड़ी महिमा लिखी है और उसका अन्तिम निष्कर्ष यह दिखलाया है कि ब्रह्मा–विष्णु, शिव सभी देव उस तत्व की आराधना से ही ब्रह्मा विष्णु शिव हैं।

अन्यथा सर्व साधारण मनुष्यों जैसे मनुष्य ही हैं।

गुरु प्रसाद

गुरोः कृपाप्रसादेन ब्रह्मविष्णु–महेश्वराः।
सामर्थ्य तत्प्रसादेर केवलं गुरुसेवया।।

ये सभी प्रकरण यह प्रगट करते हैं कि यह कोई अव्यक्त सत्ता है जो सभी देवों को प्रकाश देने वाली है और इसकी आराधना से ही मनुष्य परम श्रेय को प्राप्त हो सकता है उपनिषदों में ब्रह्म विद्योपनिषद् में सीधे शब्दों में स्पष्ट कह दिया है।

वेदशास्त्राणि चान्यानि पदपां सुमिव त्यजेत्।।
गुरुभक्ति सदा कुर्याच्छ्रेयसे भूयसे नरः।।
गुरुदेव हरिः साक्षान्नान्य इत्यब्रवीच्छ्रु ृ ि.:।।

अर्थात् वेदशास्त्र पुराणादि से विहित कर्म जो कर्म उपासना आदि का विषय है उस सब को छोड़ करके परमश्रेय लाभ करने के लिए मनुष्य को गुरु–भक्ति करनी चाहिए। गुरुदेव का स्वरूप क्या है और उनकी शक्ति क्या है यह आगे की पंक्तियों में हम वर्णन करने का प्रयत्न कर रहे हैं। अधिकांश लोगों में इस बात का प्रचार है कि जहाँ पर गुरु भक्ति को चर्चाएँ चला करती हैं वहाँ से मनुष्य अपना नाक मुँह सिकोड़ कर पीछे हट जाया करते हैं। और कहा करते हैं कि यह गुरुडम है ढकोसला है एक आदमी का प्रपंच है व कुछ भोले–भाले व्यक्तियों को बहका करके अपने पीछे लगा लेता है और अपनी पूजा ईश्वर की तरह कराया करता है। ऐसा नहीं होना चाहिए किंतु यह बात यथार्थ नहीं है। यह उन लोगों की भावना है जो सद्गुरु तत्व को बिल्कुल नहीं जानते और उससे बिल्कुल परे हैं। श्वेताश्वतर उपनिषद्

का लेख है:

यस्य देवे परां भक्ति – र्यथादेवे तथा गुरौ।

तस्यैते कथिताह्यर्था: प्रकाशन्ते महात्मन:।।

अर्थात् मनुष्य की जैसी अपने इष्टदेव में श्रद्धा हो वैसे ही गुरुदेव में होनी चाहिए तभी उसको गुप्त रहस्यों का बोध हुआ करता है। वैसे श्रद्धा के मार्ग में साधारण तो नियम यही है कि उपदेष्टा गुरु के प्रति मनुष्य को ईश्वरीय बुद्धि रखनी ही चाहिए और उसकी आज्ञाओं का पालन करना चाहिए। किंतु शास्त्रीय सिद्धान्तानुसार गुरुदेव का क्या स्वरूप हो उसको कुछ प्रमाण सहित हम समझाने का प्रयत्न कर रहे हैं। योग दर्शन में भगवान पतंजलि देव ने गुरु का व्याख्यान करते हुए इस सूत्र की रचना की।

पूर्वेषामपि गुरु: कालेनानवच्छेदात्

इस सूत्र पर भा ़ लिखते हुए भगवान व्यासदेव जी ने ये पंक्तियाँ लिखी हैं।

पूर्वेहि गुरव कालेनावच्छिद्यति, यत्रावच्छेदार्थेन कालो नोपावर्त्स्ये,

स ए पूर्वेषामपि गुरु: यथाऽस्य, सर्गस्यादौ प्रकर्षगत्या,

सिद्धस्तथाऽति क्रान्तसर्गा दिष्वपि प्रत्येतव्य:।।

इसका अर्थ यह है – वह नित्य शुद्ध चित्त परमात्मा सृष्टि के शुरुआत से अब तक होने वाले गुरुओं का भी गुरु है व अनादि सिद्ध है उसकी ही एक सत्ता इस प्रकार की है जो काल की सीमा से आगे है उसी सूत्र के भाष्य में–

भास्वती टीका में

पूर्वे गुरवो हिरण्यगर्भादय: कालेनावच्छिद्यन्ते।

अर्थात् जिनकी सत्ता काल की सीमा के अन्तर्गत है वह अधिकृत सीमा है। सद्गुरु तत्व ए ले भी आगे की वस्तु है। जिसकी कोई अवधि नहीं है जिसका कोई अन्त नहीं है। यह है अनादि और अनन्त। शुद्ध चेतन है। वही सत्ता ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि के अन्दर भी अपना प्रकाश रखती है। परमात्मा की सृष्टि के अनेक ब्रह्माण्ड है और उन अनेक ब्रह्माण्डों के अनेक ब्रह्मा, विष्णु, शिव हैं।

तत्र–तत्र चतुर्वक्ता, ब्रह्माणो हरयो भवा: असङ्ख्याताश्च रुद्राद्या,

असंख्याता पितामहा:। हरयश्चात्य संख्याता, एक एव महेश्वरे।।

अर्थात् अनन्त ब्रह्माण्डों के अन्दर असंख्य ही ब्रह्मा विष्णु शिव हैं। और वह सद्गुरु तत्व नित्य शुद्ध–नित्य मुक्त परात्पर निर्गुण ब्रह्म ही है उसमें से ही ब्रह्मा विष्णु शिव का प्राकट्य है। एक महेश्वर के अन्दर ही ईश आदि सब देवता दिखलाई देते हैं।

ईशाद्या सकला देव दृश्यन्ते परमात्मनि।

अर्थात् ईश आदि सभी देवता उस परमात्मा में इस प्रकार प्रकट होते हैं जिस प्रकार

जल के अन्दर जल की लहरें पैदा होती है या सोने से सोने के जेवरात पैदा हो जाते हैं अतः निर्णयात्मक सिद्धान्त की बात यह है। **यत्रोच्छेदनार्थेन कालो नावर्तते सगुरुः।।**

अर्थात् जिसका अन्त करने के लिए काल उपस्थित नहीं होता या दूसरे शब्दों में जो सत्ता काल के अधिकार से आगे है जिसका न कोई आदि है और न अन्त है, वही सत्ता सद्गुरु तत्व है जिसके विषय में हमारे शास्त्र कहते है।:

भयादस्य अग्निस्तपति, भयात्तपति सूर्यः।

भयादिन्द्रश्च वायुश्च, मृत्यु धावति पंचमः।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं

नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।

तमेव भान्तमनुभाति सर्वं

तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।।

अर्थात् वही एक सत्ता इस प्रकार की है जिसके भय से अग्नि तपती है सूर्य तपता है वायु और इन्द दौड़े-दौड़े फिरते है और काल हर समय आज्ञा में रहता है। वह स्वयं प्रकाश है। न वहाँ सूर्य चमकता है न चन्द्रमा चमकता है न बिजली का प्रकाश है। अग्नि का तो कहना ही क्या है।

उसी के प्रकाश से यह सब विश्व प्रकाशित हो रहा है। वही सत्ता परात्पर नित्य एवं नित्य पूज्य है। जिस शरीर को वह तत्व अपना अधिष्ठान स्वीकार करता है वह शरीर उसके तेज से प्रकाशित हो उठता है। नाम रूप से वन्दना उस शरीर की की जाती है जिसके अन्दर वह तत्व प्रकाशित होता है। कठोपनिषद् का वचन है:

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो मेधया न बहुना श्रुतेन।

यमेवैष वृणते तेन लभ्यस्त- स्यैष आत्मा विवृणुते तनु स्वाम्।।

अर्थात् ये आत्मा बहुत प्रवचन-बाजी से बुद्धिमानी से और केवल शास्त्र-श्रवण से ही प्राप्त नही होता। प्रत्युत जिसका यह स्वयं वरण करता है उसको मिलता है और जिसको यह मिल जाता है उसके शरीर को यह अपना बना लेता है। इस मन्त्र का सीधा सा अर्थ यही हुआ।

तुम्हें जानत तुमही है जाई।

अर्थात् उस परमात्मा को पाकर उसमें विलीन होकर मनुष्य उसका ही रूप बन जाता है।

इस सिद्धान्त के अनुसार वह नित्य चेतन घन सच्चिदानन्द प्रभु जिसके शरीर को अपना अधिष्ठान बनाते हैं उसमें वह स्वयं ही होते हैं। इसी का कारण है कि कभी श्री राम की श्री शिव उपासना करते हैं और श्री शिव की श्री राम उपासना करते हैं। कभी श्री शिव की

उपासना श्री कृष्ण करते हैं और कभी श्रीकृष्ण की उपासना श्री शिव करते हैं। वस्तुतः तात्विकी बात सिद्धान्त की तो यह रही कि जिसके शरीर में आदि अन्त रहित उस निर्गुण सत्ता का प्रकाश हो जाता है वही गुरु पद वाच्य है। वैसे योग सिद्धान्त के अनुसार जो योगी कृत्कृत्य हो चुका है जिसकी परम लक्ष्य तक पहुँचाने वाली निर्वाणों की वृत्ति ही शेष है और वह भी वृत्ति हर समय अस्मि अस्मि अस्मि का ही जाप किया करता है इसको निर्वाणोन्मुखी वृत्ति कहते हैं। जो योगी ज्ञान-विज्ञान तृप्तात्मा हो करके कूट स्थिति में पहुंच गया है और जिसकी केवल यह निर्वाणोन्मुखी वृत्ति शेष है जो अपने आपको सर्वभूतस्थ देखता है और सर्वभूतों को अपने अन्दर देखता है उसकी दृष्टि में द्वैत खत्म हो गया है। भेदभाव की श्रृंखला टूट चुकी है।

जगदात्मा श्री कृष्ण के कथनानुसार,

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मान।
ईक्षते योग युक्तात्मा सर्वत्र सम दर्शन:।।

'इस प्रकार का व्यक्ति भी योग युक्त होने से गुरु पद वाच्य है। जिसके हृदय को अपना बना करके ये सत्ता प्रकाशित हो उठती है वही गुरु है। वही शक्तिपात दे सकता है और सिद्धियों का दाता है। इसलिए हमारे मनों के अन्दर जो गुरु शब्द की अवहेलना रहा करती है उसका कारण केवल एक ही होता है कि हम गुरु की सही परिभाषा नहीं जानते। पुराणों में गुरु की परिभाषा निम्नांकित श्लोकों में प्रकट की है।

गु शब्द स्त्वंध कारोस्ति, रु शब्दस्तन्निरोधक:।
अन्धकार निरोधित्वाद, गुरुरित्यभिधीयते।।

अर्थात् गु शब्द का अर्थ है अन्धकार और रु शब्द का अर्थ है अन्धकार का नाश करने वाला। अन्धकार के वेग को रोक करके प्रकाश देने वाली शक्ति का नाम गुरु है। और वह स्वयं प्रणवस्वरूप है इसलिए साधक के लिए पुराणों में हमारे पूर्वाचार्यों ने आदेश दिया-

यावत्कल्पांतकी देह-, स्तावद्देवि गुरुं स्मरेत्।
गुरुलोपो न कर्त्तव्य: स्वच्छन्दो यदि भवयेत।।

अर्थात् कल्प भर रहने वाला भी शरीर प्राप्त हो जाय और कितनी ही ऊँची सामर्थ्य वाला हो जाय तो भी गुरुदेव का स्मरण करते रहना चाहिए। आजादी चाहने वाले व्यक्तियों को गुरु की उपेक्षा कभी नहीं करनी चाहिए। तभी मनुष्य परम श्रेय का भागी हो सकता है।

प्राण निरोध से चित्तवृत्ति निरोध

– योगाचार्य डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी

पिछले अंक में यह बतलाने का प्रयास किया गया था कि ये कौन–कौन से उपाय है जिनसे प्राण स्पन्दन का निरोध हो सकता है क्योंकि योगियों में यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि वृत्ति निरोध के लिए प्राण स्पन्दन का निरोध आवश्यक है। प्राण स्पन्दन के उपाय के रूप में योग वाशिष्ठ के कतिपय श्लोकों का आधार लिया गया था। इसी क्रम में निम्न श्लोक दृष्टव्य है।

तालुमूलगतां यत्नजिह्वयाक्रम्य घंटिकाम्।
ऊर्ध्व रन्ध्रगते प्राणे प्राणस्पन्दो निरुध्यते।।

अर्थात् तालु के मध्य भाग में एक लटकती हुई माँसखण्ड है जिसे कोई–कोई छोटी जिह्वा भी कहते हैं उस कपाल कुहर या जिह्वा मूल में जिह्वा को उल्ट कर लगाये जाये तो प्राण स्पन्दन रुक जाता है। इस क्रिया को योग शास्त्र में लम्बिका योग भी कहा गया है इसे ही खेचरी मुद्रा या नभो मुद्रा भी कहते हैं।

खेचरी मुद्रा को करने के लिए छेदन, दोहन और चालन की क्रिया करनी होती है। हठयोग प्रदीपिका में भी इसका निरूपण हुआ है यथा–

छेदन चालन दोहैः कलां क्रमेण प्रवर्ध येत्तावत्।
सा यावद्भ्रू मध्य स्पृशति तदानीं हि खेचरी सिद्धिः।

अर्थात् छेदन चालन तथा दोहन से जिह्वा को तब तक बढ़ावें जब तक कि भ्रूमध्य का स्पर्श न कर ले। जिह्वा के अधोभाग में एक तन्तु होती है। जिससे जिह्वा संयुक्त रहती है उसको धीरे–धीरे बांस की तन्तु से छेदन करना चाहिए। 'चालन' क्रिया में जिह्वा को गीले वस्त्र से लपेट कर धीरे–धीरे दाँये, बाँये घुमाया जाता है। दोहन क्रिया में जैसे दूध को दुआ जाता है उसी प्रकार से जिह्वा को लम्बा करने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार से जिह्वा को लम्बा करके उसे कपाल कुहर मे प्रवेश कराया जाता है कपाल कुहर में ही सुषुम्ना का द्वार है। इस प्रकार से योगी लोग खेचरी का अभ्यास करके प्राण स्पन्दन को निरुद्ध कर देते हैं। जिससे स्वतः ही चित्तवृत्ति का निरोध होने लगता है। खेचरी मुद्रा के प्रसंग में मुझे गुरुदेव भगवान की बतलाई घटना याद आ रही है। सन् 1930–32 के वर्षों में गुरुदेव श्री योग साधन आश्रम ऋषिकेश में रहा करते थे। श्री प्रभु रामलाल जी महाराज ने इन्हें खेचरी क्रिया की छेदन, दोहन और चालन के अभ्यास की आज्ञा दी। गुरुदेव जी अभ्यास में कुछ शिथिलता बरत रहे थे। एक

दिन उन्होंने खुली आँखों से खेचर सिद्ध योगियों को आकाश मण्डल में विचरते देखा। वे सोचने लगे कि मैं भी इनकी भाँति गगनचारी हो जाता। अतः अपनी शिथिलता पर क्षोभ मानते हुए इन्होंने स्टील की बनी ब्लेड से ही जीभ के नीचे की तन्तु को जल्दी से काटना शुरू कर दिया। इस तन्तु के कटने से रक्त की धारा बहने लगी अन्तर्यामी श्री प्रभु जी ने आकाश में प्रकट होकर गुरुदेव के हाथ से ब्लेड छीन लिया और दूर फेंक दिया और कहने लगे। 'अरे! तुमने यह क्या कर लिया। लोग क्या कहेंगे कि योगियों के बच्चे गूंगे होते हैं।' इधर उनके एक गुरु भाई रतनलाल ध्यान में बैठे हुए थे। श्री प्रभु जी ने कहा – 'रतनलाल! देखो तुम्हारा गुरुभाई क्या कर रहा है तुम जाकर उसे संभालो, नहीं तो दुनिया के लोग कहेंगे कि योगियों के बच्चे गूंगे होते हैं। तुम अमुक स्थान से इस जड़ी को उखाड़ लाओ और इसके मुँह में भर दो।

श्री रतनलाल जी ध्यान से उठे और श्री प्रभु जी द्वारा निर्दिष्ट स्थान पर जाकर जड़ी को उखाड़ लाये और उसके रस को निचोड़ कर गुरुदेव के मुख में डाल दिया। इससे घाव बहुत जल्दी भर गया। इस प्रकार से गुरुदेव की खेचरी प्रभुजी ने अपने संकल्प से सिद्ध करा दिया। योगी समाज में परम पूज्य देवरहा बाबा का नाम बहुत आदर से लिया जाता है। उन्हें भी श्री प्रभु रामलाल जी ने सहज ही खेचरी सिद्ध करा दी थी। उनकी काफी लम्बी आयु थी। जिनको खेचरी सिद्ध हो जाती है उनका प्राण निरुद्ध रहता है और वे लोग बहुत समय तक समाधिस्थ रह सकते हैं। खेचरी सिद्ध योगियों को भूख प्यास भी नहीं लगती है 'न तस्य क्षुधा न तृषा यो वेत्ति मुद्रा खेचरीम्' इसके अभ्यासी की आयु क्षीण नहीं होती और वे सदा नवयौवन सम्पन्न रहा करते हैं। योगदर्शन में महर्षि पतंजलि देव जी ने विभूतिपाद में एक सूत्र दिया है 'मूर्ध ज्योतिषिसिद्ध दर्शनम्' अर्थात् मूर्धा ज्योति में ध्यान लगाने से सिद्ध पुरुषों के दर्शन होते हैं। एक स्थल पर मन और प्राण के लय हो जाने पर सिद्धियाँ स्वतः ही प्रकट हो जाया करती हैं। प्राण स्पन्दन के निरोध के एक अन्य उपाय का वर्णन करते हुए भगवान वशिष्ठ श्री राम जी से कहते हैं।

द्वादशाङ्गुलपर्यन्ते नासाग्रे विमलाम्बरे
संविददृशि प्रशाम्यन्त्यां प्राणस्पन्दोनिरुध्यते।।

अर्थात् नासिका के अग्र भाग में दस अंगुल पर्यन्त विमल अम्बर में – आकाश में दृष्टि को स्थिर करके ध्यान लगाने से प्राण स्पन्दन रुक जाता है। श्री मद्भगवद्गीता में भी इसी प्रकार की बात लिखी है–

समकायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन्।।

अर्थात् अपने काय, ग्रीवा और सिर को एक सीध में रखते हुए अचल व स्थिर होकर बैठते हुए इधर-उधर न देखते हुए नासिका के अग्रभाग में ध्यान को केन्द्रित करें। प्राण स्पन्दन निरोध का एक अन्य उपाय बतलाते हुए महर्षि वशिष्ठ कहते हैं–

अभ्यासादूर्ध्वरन्ध्रेण तालूर्ध्वद्वादशान्तगे।
प्राणे गलित संवित्तो प्राणस्पन्दो निरुध्यते।।

इस प्रकार से पुनः – पुनः अभ्यास करते हुए अनाहत चक्र से (द्वादशार) प्राण को षोड्शार अर्थात् विशुद्ध चक्र तक ले आवें। इस प्रकार विशुद्ध चक्र में प्राण को रोकने पर भी प्राणस्पन्दन रुक जाता है। एक प्रकार से यह षटचक्र की साधना ही है। इस प्रकार से गुरुपदिष्ट मार्ग से जितेन्द्रिय होकर हित् मुक्त, ऋत भुक होकर धौति, वस्ति आदि षटकर्मों को करते हुए देह को विशुद्ध करके सुषुम्ना में प्राण प्रवेश के लिए महामुद्रा आदि दश मुद्राओं का अभ्यास करना चाहिए। दश मुद्राओं का वर्णन हठयोग प्रदीपिका में इस प्रकार से आया है–

महामुद्रा महाबन्धो महावेधश्च खेचरी।
उड्डियान मूल बन्धो बन्धो जालन्धराभिधः।।
करणी विपरीताख्या बजोली शक्ति चालनम्।
मुद्राणां दशकं चेदं गोपनीयं प्रयत्नतः।।

महामुद्रा, महाबन्ध, महावेध, खेचरी, उड्डियान, मूलबन्ध, जालन्धरबन्ध, विपरीतकरणी, वज्रोली तथा शक्ति चालनी ये दस मुद्रा हैं।

हठयोग एवं कुण्डलिनी जागरण में इन मुद्राओं का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। इन मुद्राओं के अभ्यास करने से 72 हजार नाड़ियों का शोधन होता है तथा सभी रक्त वाहिनी तथा ज्ञान वाहिनी (प्राणवाहिनी) नाड़ियाँ शुद्ध होती हैं जिससे स्वतः ही योगी का मन एकाग्र हो जाता है। सतोगुण की वृद्धि होती है और ज्ञान का उदय होने लगता है। रोग शोक नष्ट हो जाते हैं और साधक का अध्यात्म में स्वतः प्रवेश हो जाता है। इनमें खेचरी मुद्रा तो बहुत ही दिव्यता को प्रदान करने वाली मुद्रा है। ऐसे योगी कल्पान्तजीवी होते हैं। वर्तमान युग में खेचरी सिद्ध योगियों में परम पूज्य देवरहा बाबा का नाम आता है। इन्होंने शताधिक वर्षों तक जीवित रहकर लोगों को योग के प्रति आस्थावान बनाया है। आनन्दकन्द महाप्रभु रामलाल जी महाराज ने ही इन्हें खेचरी सिद्ध कराया था इस बात को वे स्वयं अनेक बार सभी लोगों को बताया करते थे।

योग में क्रोध नहीं

डॉ. जे. पी. शर्मा, पौंटा साहिब, हिमाचल प्रदेश

क्रोध एक मानसिक बीमारी है जो मन की कमजोरी के कारण होती है। प्रायः देखा जाता है कि मनुष्य छोटी–छोटी बात पर क्रोध करने लगता है। मन में अनेकों तरह की इच्छायें बनती तथा बिगड़ती रहती है, परंतु जो इच्छायें प्रबल रूप में होती हैं और उन्हें मनुष्य पूरी करने में स्वयं को असमर्थ और लाचार पाता है तब उसके अन्दर क्रोध जाग उठता है। प्रबल इच्छायें ही कामनायें कही जाती हैं। कामनायें, मन से नहीं, बल्कि शरीर से उठती हैं। जब कामनायें पूरी नहीं हो पातीं, तब मनुष्य को क्रोध सताने लगता है। क्रोध अन्तःमन से उठकर भौतिक रूप धारण कर लेता है। क्रोध के कारण रक्त में विषैली शर्करा पैदा होने लगती है, जिससे पाचन क्रिया खराब होने लगती है। मनुष्य चिड़चिड़ा हो जाता है। क्रोध एक विषैले नाग की तरह होता है। क्रोध से मन तथा शरीर पर दूषित प्रभाव पड़ता है। प्राणी क्रोध के कारण असफलता प्राप्त करने लगता है। क्रोध प्राणी को पाप करने के लिए मजबूर कर देता है। क्रोध में पागलपन हो जाता है। आँखों के सामने अंधकार छा जाता है तथा अपना आपा खो देता है। शरीर गर्म हो जाता है तथा रक्त तेजी के साथ गर्म होकर दौड़ने लगता है।जिससे उच्च रक्तचाप की बीमारी हो जाती है। शरीर जलने लगता है। कहते हैं क्रोधी के लिए चिता की क्या आवश्यकता है, क्योंकि क्रोध स्वयं ही शरीर को चिता बना देता है। आइये क्रोध के अन्य पहलुओं पर विचार करते हैं तथा क्रोध को शान्त करने के उपाय ढूंढते हैं।

1. क्रोध की जांच – मान लीजिए आप अपने परिवार के किसी सदस्य की अनदेखी करते हैं, उसे बुरा समझते हैं, बाहर वालों से उसकी आलोचना करते हैं, उसके कार्यों की बार–बार प्रशंसा न करके शिकायतें करते हैं। उससे छोटे सदस्यों के सामने, उसका अनादर या अपमान करते हैं या उससे छोटी–छोटी बात पर झगड़ा करते हैं, तब समझा जायेगा कि आपके जीवन में उसके प्रति क्रोध है तथा घृणा है।

2. क्रोध किस पर आता है – प्रायः क्रोध अपनों पर अर्थात् अपने परिवार के छोटे सदस्यों पर ज्यादा आया करता है क्योंकि अपने बड़ों पर क्रोध करना मूर्खता समझी जाती है। पत्नि, बच्चे, छोटे भाई–बहन, अपने पतिदेव, माता–पिता, देवरानी, देवर, भाभी, नंद, सास, बहू इत्यादि क्रोध के पात्र बनते रहते हैं। बाहर वालों पर क्रोध नहीं आता, अगर आता है भी तो क्षणमात्र के लिए, क्योंकि बाहर वालों से तो आप समझौता कर ही सकते हैं।

3. क्रोध से होने वाली हानियाँ – क्रोध से शरीर का तापमान बढ़ जाता है, जिसके कारण नाड़ियों में रक्त तेजी से दौड़ने लगता है जिसे उच्च रक्तचाप कहा जाता है। हृदय की

धड़कन बढ़ जाती है तथा हृदय गति जोर-जोर से होने लगती है। मनुष्य बैचेनी का अनुभव करता है। क्रोध के कारण शर्करा की मात्रा रक्त में बढ़ने लगती है जिसे शुगर की बीमारी के नाम से जाना जाता है। क्रोध से हार्ट अटैक आने के खतरे हो जाते हैं। लकवा, कैंसर, गुर्दे तथा यकृत की परेशानियाँ हो जाती हैं। मन अशान्त तथा तनाव में रहने लगता है। आप जिस पर क्रोध करते हैं वह भी तनाव से ग्रस्त रहने लगता है तथा आपका विरोधी बन जाता है। आपसी सम्बन्धों में कटुता, नीरसता आने लगती है। क्रोधी आदमी से दूर रहने लगते हैं। क्रोधी मनुष्य से अन्य लोग सहमे से रहा करते हैं। क्रोधी को आत्मसम्मान नहीं मिला करता। घर में झगड़े, कलह रहने लगते हैं। घर तथा बच्चों का विकास रुक जाता है। आपस में कोई खुलेमन से बात करने में शर्म अनुभव करते हैं। इस प्रकार क्रोधी का जीवन बर्बाद हो जाता है तथा समाज में भी उसे सम्मान तथा प्रतिष्ठा नहीं मिला करती। ऐसा व्यक्ति योग परायण नहीं हो सकता क्योंकि क्रोध से योग क्षीर्ण होता रहता है।

क्रोध के प्रकार

(क) अन्त: एवं बाह्य क्रोध – किसी के प्रति जब मनुष्य अपने मन ही मन में क्रोध करता है तथा उसे प्रदर्शित करने की चेष्टा नहीं करता, उसे अन्दर का क्रोध कहते हैं परंतु अन्त: क्रोध कभी न कभी किसी रूप में बाहर आ ही जाता है। वाणी तथा व्यवहार के स्तर पर आने वाले क्रोध को बाह्य या बाहर का क्रोध कहा जाता है। बाहरी क्रोध की प्रतिक्रिया देखी सुनी जा सकती है। परंतु अन्दर के क्रोध का परिणाम कई बीमारियों को जन्म देता है। इससे दिल सम्बन्धी बीमारियाँ, उच्च रक्त चाप, बदहजमी तथा शर्करा आदि हो जाती हैं।

(ख) क्रोध करना तथा क्रोध आना – जब हम अपने परिवारजनों या अन्यों पर हृदय में शान्ति तथा करुणा का भाव रखकर उन्हें सुधारने के लिए क्रोध करने का नाटक करते हैं, उसे क्रोध करना कहा जाता है। ऐसा क्रोध जानबूझ कर किया जाता है। इस प्रकार के क्रोध से हमारे शरीर पर कोई विशेष प्रतिक्रिया नहीं हुआ करती। परंतु जब हम मन की गहराइयों से दूसरों पर क्रोध करते हैं जिससे देखने वालों को भी बुरा लगे उसे क्रोध आना कहा जाता है। ऐसा क्रोध मन, वाणी तथा व्यवहार में भी क्रोध स्पष्ट झलकता है। इससे शरीर पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। शरीर गर्म, वाणी में कटुता तथा मन में झुंझलाहट तथा पागलपन का भाव आ जाता है, उसे क्रोध आना कहा जाता है।

(ग) अस्थायी तथा स्थायी क्रोध – जब क्रोध थोड़े समय के लिए आता है, उसे अस्थायी क्रोध कहते हैं। जैसे पांच, दस मिनट, आधा या एक घण्टा अथवा दो घण्टे इत्यादि। लम्बे समय तक रहने वाले क्रोध, जिसमें आपसी मन मुटाव तथा वार्तालाप भी छूट जाय उसे स्थायी क्रोध कहते हैं। स्थायी क्रोध करने वाला मनुष्य मृत्यु के बाद प्राय: प्रेत योनि में जाता है। जो अत्यन्त दु:खदायी होती है।

एक पल में क्रोध का नाश

भगवान ने सभी को ऐसी शक्ति दे रखी है कि अपने क्रोध को अभी–अभी एक पल में सदा के लिए जड़मूल से उखाड़कर अपने मन को शान्त तथा परिवार को स्वर्ग बना सकते हैं। अत: निम्न बातों को भली–भांति समझने का प्रयत्न करें–

1. क्रोध क्यों आता है? – किसी गलत बात को सोचने के कारण क्रोध आया करता है। परिवारजनों द्वारा किया जाने वाला अपमान, तिरस्कार, निरादर, नुकसान, निन्दा, अवज्ञा तथा बुराई आदि से प्राय: क्रोध नहीं आया करता।

2. कौन सी बात गलत सोचने से क्रोध आता है – क्रोध का मूल कारण है, मनुष्य का अहंकार, अज्ञान तथा स्वार्थ। प्रत्येक व्यक्ति को मेरी बात माननी चाहिए। इसी दूषित भावना के कारण क्रोध भड़क जाता है। जब हम किसी को कोई बात कहते हैं और वह उसे नहीं मानता या उसका विरोध करता है तब हमारे अन्दर का "अहं" जाग उठता है तथा क्रोध आ जाता है। मेरे परिवार के सदस्य ने मुझे बहुत दु:ख दिया है जैसे पत्नि ने, पति ने, बेटे ने, भाई ने, सास–ससुर इत्यादि ने। जब आप एकान्त में गहनता से सोचेंगे तब आपको क्रोध आयेगा उससे आप अछूते नहीं रह सकते।

3. क्रोध कैसे शान्त करें – सही बात सोचने से क्रोध तुरन्त भाग जाता है। इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। अन्य उपायों से तो क्रोध मिटाने में सहायता मिलेगी परंतु क्रोध की जड़ नहीं मिट पायेगी।

4. कौन सी सही बात सोचने से क्रोध मिट सकता है? – इसका सीधा सा उत्तर है, मुझे किसी ने दु:ख नहीं दिया है न इस समय दे रहा है और न भविष्य में देने वाला है। मुझे तो कोई व्यक्ति दु:ख दे ही नहीं सकता। जो कुछ भी हो रहा है मेरा अपना ही प्रारब्ध है जिनका कर्मफल, संस्कार के रूप में भोग रहा हूँ। बस इतना सोचते ही आपका भयंकर क्रोध आपको छोड़कर भाग जायेगा तथा आप अपने को पूर्ण शान्त तथा शाश्वत पायेंगे। अत: सत्य और सही बात सोचते ही क्रोध एक पल में जड़ से ही मिट जाता है।

5. कैसे समझें कि मुझे किसी ने दु:ख दिया ही नहीं? – कोई भी दु:ख नहीं चाहता परंतु जीवन में फिर भी दु:ख आते हैं। यह जीवन का कटु सत्य है। आपके न चाहने पर भी आपके प्यारे परिजनों के शरीर में बीमारियाँ आ जाती हैं, दुर्घटनायें तथा मृत्यु हो जाती है, आपके न चाहने पर कोई आपका अपमान कर देता है। इसका मतलब स्पष्ट है कि आपके न चाहने पर भी कष्ट तथा बीमारियाँ आ जाती हैं, अत: आपका वश चलता होता तो दु:ख तथा बीमारियाँ कैसे आतीं? सीधा सा मतलब है कि जो कुछ हो रहा है उन पर आपका कोई नियंत्रण नहीं है। अत: जो घटित हो रहा है उसे होने दें तथा उसका समाधान करें।

6. शान्त मन से सोचिए – कौन है जो आपके न चाहने पर भी आपके जीवन में हर

क्षण बड़े से बड़े दु:ख या कष्ट को भेज रहा है तथा आपके जीवन के सुख को निर्दयी मनुष्य की तरह क्षणभर में आपसे छीन लेता है। इस प्रश्न के दस उत्तर हैं – 1) आपके गलत कर्म 2) आपका भाग्य 3) आपका प्रारब्ध 4) आपका खराब समय 5) नकारात्मक विचार 6) आपकी अपनी भूल जिसका नाम है – पराधीनता 7) होनहार या भावी 8) देवदोष या पितृदोष 9) भगवान 10) भगवान का विधान या कानून। इन दस में से कोई न कोई कारण अवश्य बनता है तभी जीवन में दु:ख आते हैं। थोड़ा सा सोचिए – क्या इस संसार में ऐसा कोई मनुष्य है जिसको ईश्वर ने यह अधिकार दिया हो कि तुम चाहो उसके जीवन में खूब दु:ख भेज देना तथा उसका सुख चैन छीन लेना। इसका उत्तर – नहीं, कदापि नहीं। इसका अर्थ हुआ कि कोई भी मनुष्य आपको दु:ख नहीं दे सकता।

7. अपनी सही सोच – जब भी आपके जीवन में कोई दु:ख आये तब यही सोचें कि यह दु:ख दस में से किसी न किसी कारण से ही आया है, मुझे किसी भी परिवारजन अथवा अन्य व्यक्ति ने दु:ख नहीं दिया है। इसी सही सोच से आपका क्रोध मिट जायेगा। यदि आप सोचेंगे कि मुझे यह दु:ख परिवार के अमुक व्यक्ति ने दिया है तो आपको क्रोध आयेगा। ऐसा सोचना अपने जीवन के सच्चे अनुभव को ठोकर मारना है।

8. कभी गलत बात न सोचें – आपके गलत बात सोचने का एक खास कारण है, जो इस प्रकार है – आपके जीवन में जब भी दु:ख आयेगा तो वह दो तरह से आयेगा। एक तो इस प्रकार से दु:ख आयेगा कि उसको देने वाला आपको आँखों से दिखाई नहीं देगा। आपको इतना भी पता नहीं होगा कि यह दु:ख मुझे किसने दिया, जैसे – संयम नियम से सावधानी पूर्वक रहने के बाद भी आपके शरीर में असाध्यरोग हो गया, पूरी सावधानी से व्यापार करने पर भी नुकसान हो गया, कार होशियारी पूर्वक चलाने पर भी दुर्घटना हो गयी, चोट लग गयी, परिवार के सदस्य की बैठे बैठे मृत्यु हो गई इत्यादि। ये कुछ ऐसे दु:ख होते हैं जो अपने आप आते हैं, चाहे आपने कितनी भी सावधानी रखी। पता ही नहीं चला कि यह दु:ख कैसे आया और किसने दिया? ऐसी स्थिति में आप किस पर क्रोध कर सकेंगे? यदि आपकी असावधानी तथा लापरवाही के कारण दु:ख आया होता, तो आप उसका पश्चाताप करते।

दूसरे आपके जीवन में ऐसे दु:ख होंगे जिनको देने वाला आपके सामने होगा या उसके बारे में आपको पता होगा या आपने स्वयं देख लिया होगा। अत: सावधानी पूर्वक जब आपको दु:ख देने वाले का पता चले कि अपने ही परिवार का है तब यही सोचें कि दु:ख इसने नहीं दिया, बल्कि दु:ख तो मेरे अपने प्रारब्ध से आया है तथा यह दु:ख दस में से किसी न किसी कारण से आया है। इतना विचार करते ही क्रोध दूर हो जायेगा। परंतु दु:ख आने पर आप अपना यथा संभव बचाव अवश्य करें। बचाव बातचीत करके, अथवा उनके विरुद्ध कार्यवाही करके हो सकता है, परंतु कभी न सोचें कि इसने मुझे दु:ख दिया है।

आप सोचेंगे कि दु:ख देता हुआ मुझे स्पष्ट दिखाई दे रहा है, ऐसी स्थिति में कैसे सोचें

कि इसने दुःख नहीं दिया है? इसका साधारण सा उत्तर है कि ईश्वर ने आपको देखने के लिए तीन यंत्र दिये हैं – आँखें, बुद्धि तथा विवेक। आँखें देखने का कमजोर यंत्र है। उन पर भरोसा न करें। बुद्धि उनसे ज्यादा बलवान एवं तेज यंत्र है तथा विवेक तो बुद्धि से भी तेज है। जैसे पाँच दिन पुराने रसगुल्ले या गुलाब जामुन या रात को रखी सब्जी या दाल आपको आँखों से देखने से ऐसी ही दिखेगी जैसे बनाते समय होती है और अगर आँखों पर विश्वास करके उन्हें खा लिया तो आपको उसके भीषण परिणाम भुगतने पड़ जायेंगे। बच्चों से यह भूल आसानी से हो जाती है। अतः ऐसी स्थिति में आपको अपनी बुद्धि तथा विवेक से सोचना होगा कि ये चीजें खराब हो गयीं हैं, इन्हें मत खाओ, खाने से हानि होगी। अतः आप बुद्धि के फैसले को मानेंगे। बुद्धि भी आपको धोखा दे सकती है। चोरी का सर्वोत्तम तरीका बुद्धि ही बतलाया करती है, परंतु विवेक आपको सचेत करता है, कि चोरी करना भूल तथा पाप है। अगर तुम्हारे घर कोई चोरी करे तब तुम्हें कितना दुःख उठाना पड़ेगा? इसलिए चोरी मत करो।

जब आप बुद्धि और विवेक से गहन रूप से सोचेंगे तथा देखेंगे कि मुझे यह दुःख किसने दिया है, तो तत्काल यह निर्णय कर लेंगे कि यह तो दस कारणों में से एक कारण से आया है। नौ कारणों के सम्बन्ध में शंका हो सकती, लेकिन आपको यह मानना ही होगा कि दुःख आपकी अपनी भूल से आया है। उस गलती का नाम है – पराधीनता। शरीर, परिवारजनों एवं किसी भी व्यक्ति से आप कामना रखेंगे तो आप पराधीन हो जायेंगे। इसलिए कहा गया है – *"पराधीन सपनेहुं सुख नाहीं।"* कामना पूरी करना अथवा करवाना आपके वश में नहीं है – यह तो आप भलीभाँति जानते हैं। कामनायें कभी काम में नहीं आतीं।

जब कामना या इच्छा पूरी नहीं होगी तब आपको निश्चित रूप से दुःख होगा, चिन्ता होगी, मानसिक वेदना तथा तनाव रहेगा, परेशानी होगी। आप कामना त्याग दें, केवल सद्‌भावना रखें, अपना कर्तव्य तथा कर्म करते रहें, तब आपको कभी भी न दुःख होगा और न क्रोध होगा। स्वतः ही परमशान्ति, मुक्ति, भक्ति तथा भगवान की प्राप्ति होगी। यही मानव जीवन की सर्वोत्तम सफलता का सुन्दरसा चित्रण है।

मेरे परम आराध्य श्री सद्‌गुरु देव भगवान के पावन चरण कमलों में असत तनधारी का कोटि कोटि साष्टांग प्रणाम्।

जब हम बेहोश होते हैं तब पदार्थ के निकट होते हैं

जब होश में होते हैं तो परमात्मा के निकट होते हैं

श्री सिद्धगुफा की शताब्दी

- अवनीश भटनागर, सहारनपुर

सिद्धयोग के समस्त सम्माननीय पाठकों को नववर्ष 2011 की हार्दिक शुभकामनाओं के साथ ही एक बात और कहने का मन बना कि योग जिज्ञासु जगत में योग शक्ति संचारिणी, सिद्धरज प्रदायिनी, योगमाला, त्रिलोक विख्याता, देवताओं और सिद्धों द्वारा पूजित योगीश्वर श्री रामलाल महाप्रभु जी की दिव्य लीलाओं की साक्षी पुण्यमयी पावन श्री सिद्धगुफा का जगत प्रादुर्भाव का वर्ष 2011 शताब्दी वर्ष है। जिसको अति हर्षोल्लास के साथ श्री सिद्धगुफा परिवार को पावन श्री सिद्धगुफा की छत्रछाया में मनाना चाहिए।

पावन श्री सिद्धगुफा पूर्वकाल में बाबा की गुफा गुरु का बाग सवाई के नाम से जानी जाती थी। योगीश्वर श्री रामलाल महाप्रभु जी ताले लगी इस गुफा में से अणुरूप बना करके बाहर निकल कर आकाश में उड़ते हुए कैलाश को चले गये थे। भक्तों के अधिक विलाप करने पर गुफा में से आपकी दिव्य वाणी सुनाई दी कि 'हम बारह वर्ष पश्चात् पुनः आयेंगे और फिर आप आये भी और अपनी पावन गुफा को प्रणाम करके वापस जाने लगे तो लोगों ने इनको पहचान लिया तथा योगीश्वर श्री रामलाल महाप्रभु जी का बहुत सत्कार किया।' महाप्रभु जी श्री योग साधन आश्रम ऋषिकेश और निज निवास भाई का कटरा अमृतसर आदि स्थानों पर प्रायः रहा करते थे। यह सब विवरण सवाई के भक्तों को भी ज्ञात हुआ, वह योग साधन आश्रम ऋषिकेश श्री रामलाल महाप्रभु जी के पावन श्री चरणों में सदैव यह प्रार्थना करते कि आपके सबसे पुराने योग प्रचार केन्द्र जहाँ पर आपकी पावन गुफा बनी है, सवाई में भी अपने कोई योग्य ब्रह्मचारी को भेजने की कृपा करें। श्री रामलाल महाप्रभु जी उनके आग्रह को स्वीकार कर कह देते, हाँ समय आने पर अवश्य भेजेंगे। लाड़ले शिष्य श्री मुलखराज जी को भी हरिद्वार में श्री रामलाल महाप्रभु जी ने यह कहा था कि तुम सवाई के लोगों से बात मत करो। यह कार्य तुम्हारे द्वारा नहीं होगा। जिसके द्वारा होगा अभी तो वही हमारी शरण नहीं आया है। यह सारी बातें श्री महाप्रभु जी ने हमारे पूज्य चरण सद्गुरु देव योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन महाप्रभु जी के लिए ही कही थीं। बाबा की गुफा गुरु का बाग सवाई से श्री सद्गुरु देव चन्द्रमोहन जी के विशाल योग प्रचार को देखकर स्वामी श्री मुलखराज जी प्रायः कहा करते थे कि श्री रामलाल महाराज प्रभु जी ने हरिद्वार में वह सब बातें 'चन्द्रमोहन' के लिए ही हमसे कही थी। योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी ने इस बात को 'दिव्य जीवन दर्शन' पुस्तक में स्वयं वर्णन किया है। योगीश्वर श्री रामलाल महाप्रभु जी जगत में विराजमान थे और स्वयं जगत को सिद्धयोग का दान देकर निहाल कर रहे थे और गुरु का बाग सवाई में भी पधारते थे। परंतु एक अकाट्य सत्य जिसे हम

बचाने का प्रयास कर रहे है। इस पर विचार अवश्य करें कि सवाई धाम से जो विराट योग प्रचार, शक्तिपात और जगत कल्याण का कार्य सद्गुरुदेव योगेश्वर महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के द्वारा सम्भव हुआ। उसमें श्री रामलाल महाप्रभु जी का अपना हार्दिक सिद्ध संकल्प अपने सुयोग्यतम ब्राह्मण शिष्य श्री चन्द्रमोहन जी के लिए ही था, महाप्रभु श्री रामलाल जी ने अपने अन्य किसी शिष्य से 'सवाई धाम' की पावन भूमि से कोई जगत कल्याण का कार्य नहीं कराया, सारा जन कल्याण कार्य श्री चन्द्रमोहन महाप्रभु जी के द्वारा ही कराया। समस्त सद्प्रचार और वहाँ जो लौकिक और अलौकिक वैभव दृष्टिगत है, वह सब प्रयास सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन महाप्रभु जी का ही है। आज जो भी श्री सिद्धगुफा पर विराजित है, चाहे नाम, चाहे काम और चाहे धाम सब हमारे सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन महाप्रभु जी के कठिन परिश्रम और परम तप एवं रात दिन के अथक प्रयासों से ही है। उन्होंने अपना अमूल्य दिव्य जीवन अपने प्यारे सद्गुरुदेव जी के लीलाधाम को बनाने, चमकाने और जग को बताने में पूर्णतः समर्पित कर दिया। उनकी इसी विलक्षण महानता एवं गुरु चरणों में समर्पणता को श्री रामलाल महाप्रभु जी ने बहुत पहले ही देख लिया था। इसलिए श्री रामलाल महाप्रभु जी ने स्वयं जगत में विराजमान रहते हुए भी सवाई धाम से वह विराट योग प्रचार स्वयं नहीं किया और अपने शिष्य समाज को जताया और बताया कि सवाई से जिसे विराट योग प्रचार कार्य को करना है, अभी वह हमारी शरण नहीं आया है। समय आया हमारे श्री सद्गुरुदेव योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन महाप्रभु जी, सिद्ध सिद्धेश्वर श्री रामलाल महाप्रभु जी की पावन चरण शरण आये। इनको आते ही अति विशेष योग्यताएं प्रदान कर अति विशेष अधिकार प्रदान किये जैसे-तुम सन्यासियों को ही नहीं उनके बाप को भी दीक्षा दे सकते हो, तुम किसी को एक बून्द शक्ति दोगे तुम्हारी तत्काल सौ बून्द शक्ति बढ़ जायेगी और तुम्हारा कोई भजन पुण्य नष्ट नहीं होगा आदि-आदि और सवाई गुफा से सारे योग कार्य को संचालित करवाया। हमने अपने आदरणीय बड़े गुरु भाईयों से यह सुना था कि श्री रामलाल महाप्रभु जी ने अपने जगत में विराजमान रहते ही सवाई के भक्तों के विशेष आग्रह पर प्यारे एवं पूर्ण योग्यतम शिष्य श्री चन्द्रमोहन जी को गुरु का बाग सवाई भेजा था। गाँव के लोगों की विशेष रुचि ना रहने के कारण और श्री चन्द्रमोहन जी को कई दिन भोजन न मिलने के कारण से पत्र द्वारा यह कहकर वापस बुला लिये थे कि जहाँ हमारे बच्चे भूखे रहते हो उस स्थान को तुरन्त छोड़ दो। श्री महाप्रभु रामलाल जी के लीलावसान के पश्चात् लगभग सन् 1940 के आस-पास श्री रामलाल महाप्रभु जी की तीव्र अन्तर्प्रेरणा स्वरूप सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी वृन्दावन से पैदल चलकर गुरु का बाग सवाई बाबा की गुफा पर पहुँचे थे और योग प्रचार का शुभारम्भ किया। पावन गुफा का नाम रखा 'सिद्ध वन्दिता या गुहया सिद्ध गुहया' अर्थात् सिद्ध महापुरुषों देवी देवताओं द्वारा जो पूजित सेवित वन्दित है, वह गुफा ही सिद्धगुफा है। पावन श्री सिद्धगुफा पहले प्यारे लाल पटवारी जो जाति से कायस्थ थे, उनकी बाग में थी उन्होंने उस बाग को श्री रामलाल महाप्रभु जी के पावन

श्री चरणों में सौंप दिया था और बाग का नाम हो गया था 'गुरु का बाग'।

सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन महाप्रभु जी ने अपने अथक प्रयास से गुफा के आस-पास बहुत सी भूमि क्रय की और आगन्तुक श्रद्धालुओं के लिए गर्मी-सर्दी बरसात से बचने के लिए कमरों का निर्माण करा कर आश्रम को भव्य रूप प्रदान किया और नाम रखा '**श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र**'। श्री सद्गुरुदेव चन्द्रमोहन जी महाराज ने कठिन परिश्रम करके जगत में योग का झण्डा लहरा दिया और महाप्रभु श्री रामलाल जी व श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र सवाई ग्राम एत्मादपुर आगरा को विश्व विख्यात बना दिया। लाखों लोगों ने पावन श्री सिद्धगुफा के दर्शन किये व श्री सिद्धगुफा की वरदानी रज जिसे खाकर जीव का आत्म उत्थान, रोग निदान एवं प्रभु जी का वरदान स्वमेव प्राप्त हो जाता है। भक्त श्रद्धा से निरन्तर सेवन कर रहे हैं। परम पावन श्री सिद्धगुफा योगमाता के साथ-साथ श्री सद्गुरुदेव की भाँति स्थूल रूप में हमारे सामने सदैव स्थापित रहकर सद्प्रेरणा एवं सिद्धयोग प्रदान करती रहेगी।

वर्तमान में सिद्धयोग विद्या प्रकाशक ब्रह्मचारी आचार्य डॉ. श्री दासलाल जी महाराज योग के प्रचार क्षेत्र में बहुत अच्छा कार्य कर रहे हैं। मासिक पत्रिका सिद्धयोग का कुशल सम्पादन, अनेक ग्रन्थों की रचना, आश्रम की सुव्यवस्था एवं उत्सवों का कुशल संचालन और साथ-साथ अन्य मण्डलों में योग सम्बन्धी कार्यक्रमों में सर्वोच्च सद्गुरु पीठ श्री सिद्धगुफा का प्रतिनिधित्व करना एवं अन्य आश्रम हित के कार्य श्री प्रभु जी की कृपा से उनके कर कमलों द्वारा हो रहे हैं। अन्य महान विभूतियाँ जो जग में पावन श्री सिद्धगुफा का प्रकाश जन-जन तक पहुँचाने में लगी है। उनमें प्रमुख हैं आदरणीया बहन जी सुश्री उमा शक्ति जी जो निरन्तर अपने योग प्रचार कार्य में लगी हैं। आचार्य श्री पूरन चन्द जी महाराज, ब्रह्मचारी श्री वेदराम जी, आचार्य श्री चन्द्रहास जी और श्री सिद्धगुफा परिवार के योग आश्रम व उनके योग्य आचार्यगण एवं साथ ही योग प्रचार मण्डलों के योग सम्बन्धित कार्यक्रमों के आयोजक महानुभावगण यह सभी परमार्थिक जीव पावन श्री सिद्धगुफा की सदा जय और विजय की इच्छा रखते हैं एवं जय जयकार बोला करते हैं।

आदरणीय भाई जी श्री पुष्कर दत्त जी श्री अलुपुर ग्राम वाले जिनके द्वारा एक समय यह दृश्य देखा गया था कि ब्रह्मा जी, विष्णु जी, शंकर जी, इन्द्रदेव जी, वायुदेव जी, अग्निदेव जी, सिद्धपुरुष, सन्तपुरुष आदि भगवत स्वरूप अपने-अपने विमानों से पावन श्री सिद्धगुफा के सामने उतरे, उन्होंने श्री सिद्धगुफा को दण्डवत प्रणाम किया फिर परिक्रमा की और पुनः प्रणाम करके अपने-अपने विमानों में बैठकर प्रस्थान कर गये। ऐसा हर रात्रि में हुआ करता है। जो अनेक भक्तों के देखने में आ चुका है।

ऐसी है पावन श्री सिद्धगुफा की महिमा जो हमने बहुत थोड़े से शब्दों में पावन श्री सिद्धगुफा की जगत प्रादुर्भाव शताब्दी वर्ष में वर्णन की है। थोड़े कहे को अधिक प्रेरक समझेंगे। हमारे आदरणीय विज्ञ गुरु भाई ऐसी मुझे आशा है। श्री सिद्धगुफा की पावन शताब्दी खूब

धूमधाम से मनाकर श्रद्धा सुमन श्री श्री सिद्धगुफा को समर्पित तो कर ही सकते है। क्योंकि यह श्री सिद्धगुफा आश्रम महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज का सबसे पुराना योग आश्रम है और हमारे जगत कल्याणी सद्गुरुदेव योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन महाप्रभु जी की कर्मभूमि है। महाप्रभु श्री रामलाल जी का सबसे पुराना और प्रथम योग केन्द्र होने के कारण से योग अभ्यास आश्रम, कनखल, छेहरटा, अमृतसर, होशियारपुर, दिल्ली आदि योग केन्द्रों के लिए भी श्रद्धा का पात्र है।

ब्रह्मचर्येण तप सा देवा मृत्युमुपाघ्नत्।
इन्दोह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वरा भरत्।।

- अथर्व वेद

ब्रह्मचर्य का पालन और तपस्या करके देव पुरुषों ने मृत्यु को मार भगाया है। ब्रह्मचर्य का पालन कर यह जीवात्मा इन्द्रियों से दुर्लभ सुख को प्राप्त करता है।

विमर्श - जीवात्मा अपने कर्मों का शुभाशुभ फल भोगने के लिए, नाना प्रकार की ***योनियों में बार-बार जन्म लेता है और मरता है।*** मनुष्य योनि में वह फल भोगने के साथ ही नया कर्म भी करता है जबकि इस योनि के अलावा ***अन्य सभी योनियों में जीवात्मा सिर्फ पूर्व कर्मों का फल भोगता है नया कर्म नहीं करता।*** ऐसी दुर्लभ और अत्यन्त उपयोगी मनुष्य योनि का समय, नाना प्रकार के विषयभोग और कुकर्मों को करने में उलझा रह कर, बेकार व्यतीत कर देता है और ***इन कर्मों का फल भोगने के लिए विभिन्न योनियों में भटकता रहता है।*** इस मनुष्य जीवन का सदुपयोग करने, उचित उपभोग करने और अच्छे कर्म पर आत्मोन्नति करने के लिए हमें ब्रह्मचर्य का पालन और व्यायाम का नियमित अभ्यास अवश्य करना चाहिए ताकि हम इस जीवन में लम्बे समय तक स्वस्थ और बलवान बने रह सकें और शुभ कर्म करते रह सकें।

योग क्षेम वहाम्यहम्

कृष्ण कुमार पाण्डेय, गोरखपुर

गीता योग योगेश्वर भगवान की वह अमोघ उपदेश है जिसके मात्र नित्य परायण से ही व्यक्ति कल्याण का भागी हो जाता है। भगवान ने कहा है कि –

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषा नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।।

इस श्लोक में दो शब्द महत्वपूर्ण है किसी व्यक्ति के कल्याण के लिए– यह कल्याण चाहे आध्यात्मिक हो चाहे भौतिक। अध्यात्म और भौतिकता दोनों ईश्वर की कृपा से ही पाया जा सकता है। यहाँ योग से तात्पर्य भगवान के रूप एवं स्वरुप की प्राप्ति का होना। क्षेम का तात्पर्य है जिस ईश्वर को उन्हीं की कृपा से पाया गया है। उस प्राप्ति की रक्षा करना पुरुष का धर्म है। भौकि सुख भी हम ईश्वर की कृपा से ही प्राप्त करते हैं लेकिन उसका रक्षण हम नहीं कर पाते हैं। क्योंकि मनुष्य फलाभिलाषी है। किंतु गोप्य करना वह नहीं जानता है। कदाचित् संस्कार वशात् अहंभाव के कारण ऐसा हो जाता है। एक सूत्र है समुद्र पीकर भी होंठ सूखे हो। यह बड़ी बात है। सद्गुरुदेव भगवान अपने उपदेशों में सदैव बताया करते हैं। एक और ईश्वर की सूक्ष्म क्रिया है। यदि कदाचित् सद्गुरु की कृपा से कोई व्यक्ति अपने आत्म कल्याण के बारे में प्राप्त कर लेता है। जबकि वह स्वयं नहीं जानता कि इससे हमारा कब आत्म कल्याण होगा। ऐसे में ईश्वर स्वयं उसकी वाणी में ताला जकड़ देते हैं कि वह उस वस्तु को भूल जाता है। लेकिन उसका आत्म कल्याण समय पर हो जाता है। साधक भाइयों यह अत्यन्त रहस्य एवं गूढ़ वस्तु है जिसको व्यक्त नहीं किया जा सकता है। मात्र अनुभव किया जा सकता है।

भगवान ने स्वयं कहा कि –

इदंतु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्य न सूयवे।
ज्ञानं विज्ञान सहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेशुभात्।।
राज विद्या राजगुहयं पवित्र मिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्।।

यह योग ज्ञान एवं विज्ञान से युक्त एवं अत्यन्त गोप्य है। हमारे मनीषियों ने भी योग के उन रहस्यों को शायद व्यक्त शब्द रूप नहीं दिया है। क्योंकि हम कलियुगी पुरुषों की आस्था बड़ी बलवती एवं निष्ठा वाली नहीं है। जैसे दूध तो अच्छी वस्तु शरीर को पुष्टि देने वाली बुद्धिवर्द्धक है। यदि हमारा पेट ठीक नहीं है तो वह हमारे लिए सुपाच्य न होकर अपने मूल गुण धर्म को छोड़कर मल बनकर बाहर हो जाय। इसीलिए भगवान ने कहा कि प्राप्ति की रक्षा करना

ही श्रेयस्कर होगा। यदि रक्षा नहीं कर पाये तो निश्चय ही हम उसी प्रकार पुनः रिक्त हो जायेंगे जैसे पहले थे। यह दृश्य जगत ईश्वर से व्याप्त है। लेकिन उसी प्रकार है जैसे जल से बर्फ का निर्माण होता है। दोनों जल ही है लेकिन गुण और धर्म से अलग–अलग है। इसी प्रकार ईश्वर समस्त प्राणी में अपने रूप से लेकिन उसके गुण धर्म के अनुसार व्याप्त रहता है। वायु सर्वत्र आकाश में विद्यमान है। वह अपने मूल रूप वायु का ही रूप लेकर विद्यमान रहता है। किन्तु परिस्थिति और परिवेश के अनुसार उसका स्वरूप बदल जाता है। जैसे जहाँ सुगंधित पुष्प है वहाँ की वायु सुगंधित होगी। जहाँ शीतलता है वहाँ की वायु शीतल होगी। जहाँ का परिवेश दूषित होगा वहाँ की वायु स्वाभाविक रूप से दूषित हो जायेगी। यही बात ईश्वर के लिए है। जैसा व्यक्ति का स्वरूप और स्वभाव होगा उसे उसी तरह का परिणाम प्राप्त होगा। ईश्वर के यहाँ से किसी भी प्रकार का अभिन्नता नहीं किया जाता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ईश्वर कर्मों के बन्धन से रहित है। अन्य सभी जीव जगत यहाँ तक कि देवता भी कर्म बन्धन के वशीभूत होते है। यह अलग बात है कि कुछ सोने की जंजीर से जकड़े है। कुछ सामान्य जंजीर से कुछ और सामान्य जंजीर से जकड़े हुए है। मात्र वह परमात्मा ही सर्वत्र समान रहने वाला एवं स्वतन्त्र ईश्वर है। पातंजलि योग में ईश्वर के बारे में कहा गया – क्लेश कर्म विपाकऽ शैयऽपामृष्ट पुरुष विशेष ईश्वरः। वह ईश्वर संसार का पिता माता और पितामह पवित्र ओंकार ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद स्वरूप है। सबका भरण पोषण करने वाला है तथा सबका निधान अर्थात् प्रलय काल में सबको सूक्ष्मरूप से अपने में स्थित किये हुए निवास करता है। व्यक्ति अपने कर्मों के अनुसार इन्द्रपद को प्राप्त कर भोगों को भोगता है तथा वहाँ से भी पुण्य के क्षीण होने पर वह पुनः मृत्यु लोक में आ जाता है। वास्तव में कर्म करने का मूल स्थान मृत्युलोक ही है जहाँ व्यक्ति कर्म करते हुए ईश्वर को प्राप्त होता है अथवा अन्य विभिन्न लोकों को प्राप्त करता है। वास्तव में देवता को पूजने वाला देवता को प्राप्त करता है, पितरों को पूजने वाला पितर को तथा भूतों को पूजने वाले भूतों को प्राप्त होते हैं। लेकिन ये सब उसी परमात्मा के रूप है। जैसे शरीर विभिन्न अवयवों का रूप है। यदि कोई भी अवयव न हो तो वह पूर्ण नहीं कहलाता है। इसीलिए भगवान ने कहा – लेकिन जो मेरा भक्त मुझे पूजता है। उसका पुनर्जन्म नहीं होता। योगियों के सम्बन्ध में भगवान ने बताया कि –

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥

यहाँ भगवान ने बताया कि इस दृश्य जगत में न मेरा कोई प्रिय है न अप्रिय मैं समभाव से सबमें व्याप्त हूँ। मेरा भक्त जैसी वृत्ति वाला होता है वैसा ही मैं सर्वत्र समदर्शी भाव से विराजमान रहता हूँ। सर्वत्र समदर्शनः। इससे यह सिद्ध होता है कि ईश्वर का प्रिय, योगी, ऋषि, मुनि, मनुष्य, राक्षस तथा अन्य पाप योनि वाले हो सकते हैं। कदाचित किसी भी समय उनमें मन मेरे प्रति श्रद्धा उत्पन्न होने से वे मेरे को प्राप्त हो जाते है।

स्वरूप वाल्मीकि अजामिल, गणिका आदि अन्य योनियों वाले भी ईश्वर के परायण होकर सद्गति को प्राप्त कर लिये है। इसीलिए योग योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण ने स्पष्ट रूप से कहा है कि–

किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा।
अनित्यम सुखं लोक मिमं प्राप्य भजस्वमाम्।।
मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामे वैष्यसि युक्त्वैव मात्मानं मत्परायण।।

ईश्वर की प्राप्ति मनुष्य जन्म की बड़ी उपलब्धि है। यह उपलब्धि विभिन्न साधना जैसे– योग साधन, चिन्तन मनन, समर्पण वृत्ति अथवा सब कुछ ईश्वर रूप कर्तव्य मानकर कर्म करना, ईश्वर सर्वत्र विद्यमान है ऐसी वृत्ति रखकर मूल लक्ष्य का रक्षण किया जा सकता है। आचार्य शंकर ने बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा है–

जलं पङ्कवदत्यन्तं पङ्कापाये जलंस्फुटम्।
यथा भांति तथात्मापि दोषाभावे स्फुटप्रभः।।

अर्थात् जैसे अत्यधिक गंदा जल हो यदि उसको कुछ देर के लिए रख दिया जाय तो वह स्वच्छ जल मात्र रह जाता है। उसी प्रकार विभिन्न प्रकार के दोषों के होने पर भी व्यक्ति यदि शान्त चित्त से किसी भी विद्या का आश्रय ग्रहण करे तो वह ईश्वर का प्रिय बन सकता है।

विद्वान प्रशस्यते लोके विद्वान् गच्छति गौरवम्।
विद्यया लभ्यते सर्वं विद्या सर्वत्र पूज्यते।।

– चाणक्य नीति

इस संसार में विद्वान ही प्रशंसित होता है, विद्वान ही सर्वत्र आदर पाता है। विद्या से ही मनुष्य धन–धान्य, मान–प्रतिष्ठा और सब कुछ प्राप्त कर लेता है। विद्या का हर क्षेत्र में आदर होता है। 'विद्या ददाति विनयं' के अनुसार विद्या से विनम्रता आती है।

प्राण क्या है?

रघुवीर चन्द ठाकुर, म.नं. 3, खटीमा, उत्तराखण्ड

सृष्टि व व्यष्टि प्राण :

प्राण समस्तप्राणियों के भीतर जीवनी शक्ति है। ईश्वरीय प्राण या विश्वव्यापी प्राण को समष्टि प्राण कहते है। उसी समष्टि प्राण का ही क्षुद्र अंश प्राण तरंग बनकर प्राणियों में व्याप्त है, उसे व्यष्टि प्राण कहते हैं, जो शारीरिक और मानसिक शक्तियों के रूप में प्राणियों में व्याप्त है तथा शरीर यंत्र को चलाता है। इस विश्व ब्रह्माण्ड में जितनी भी किसी प्रकार की ऊर्जा एवं शक्तियाँ है सब मिलकर प्राण की ही अभिव्यक्ति है जैसे तापीय शक्ति, विद्युतीय, चुम्बकीय ध्वनीय, प्रकाशकीय, गुरुत्वाकर्षण आदि सभी शक्तियाँ और ऊर्जायें।

उपनिषद् का कथन :

प्राण के विषय में प्रश्नोपनिषद् में ऋषि कबन्धी द्वारा पूछे गये प्रथम प्रश्न के उत्तर में महर्षि पिप्पलाद इस तरह मर्म को समझाते हैं।

तस्मै स होवाच प्रजाकामो वै प्रजापतिः

सतपोऽतप्यत स तपस्तत्वा स मिथुनमत्पादयते।

रयिं च प्राणं चेत्येतौ मे बहुधा प्रजाः करिष्यत इति।। 4।।

प्राण व रयि की उत्पत्ति :

महर्षि पिप्पलाद बोले – हे कात्यायन यह बात वेदों में प्रसिद्ध है कि सम्पूर्ण जीवों के स्वामी परमेश्वर को सृष्टि के आदि में जब प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा हुई, तब उन्होंने संकल्प किया। तप से उन्होंने सर्व प्रथम रयि और प्राण – इन दोनो का एक जोड़ा सृष्टि उत्पन्न करने हेतु पैदा किया। समष्टि जीवनी शक्ति प्रदान करने वाली का नाम प्राण तथ पदार्थों में जीवन स्थिति सामन्जस्य के लिए भूत समुदाय नाम रयि दिया प्राण चेतना है रयि शक्ति आकृति है। उन दोनो के संयोग से सृष्टि के सभी कार्य सम्पन्न होते हैं।

प्राण का सूर्य चन्द्र से सम्बन्ध :

सूर्य जीवनी शक्ति का घनीभूत स्वरूप है और चन्द्रमा रयि स्थूल तत्वो को पुष्ट करने वाली यह दोनों शक्तियाँ प्राणियों के अंग प्रत्यंग में व्याप्त हैं। जीवनी शक्ति का सम्बन्ध सूर्य से है और माँस मेद आदि का सम्बन्ध चन्द्रमा से है। सूर्य की किरणें प्राणों में नई स्फूर्ति देती हैं। अतः सूर्य ही प्राणो का प्राण है तथा प्राण अपान, समान, व्यान और उदान उन पाँच रूपों में सूर्य का ही अंश है।

प्राण का आश्रय :

सृष्टि क्रम में पंच तन्मात्रा शब्द, स्पर्श, रूप, रस गन्ध से ही क्रमशः शब्द से स्थूल आकाश, स्पर्श से वायु, रूप से अग्नि, रस से जल, गन्ध से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। समस्त स्थूल रूपों का आधार आकाश है, बिना आकाश के कोई पदार्थ निर्मित हो ही नहीं सकते। 5 ज्ञानेन्द्रिय और 5 कर्मेन्द्रिय अन्तःकरण चतुष्टय का आश्रय प्राण है, प्राण का आश्रय आत्मा है।

प्राण के कार्य

1. सृष्टि उत्पत्ति में :

प्राण के अनन्त कार्य हैं। प्राण ही संतान रूप में जन्म लेता है। प्राण ही देवताओं के लिए हवि पहुँचाता है। प्राण ही इन्द्र के रूप में है। प्राण ही प्रलयकाल में संहार करने वाला रुद्र है, वही विचरने वाली वायु है। प्राण ही अग्नि, चन्द्र, तारे ज्योतिर्गणों का स्वामी सूर्य है, प्राण ही मेघ बनकर वर्षा करता है। प्राण ही जीवन निर्वाह के लिए अन्न उत्पन्न करता है।

2. मुख्य प्राण बनकर :

प्राण ही मुख्य प्राण बनकर अन्य चार वायु उदान अपान, व्यान, समान पर नियन्त्रण करके शरीर के विभिन्न प्रथक प्रथक स्थानों में प्रथक –प्रथक कार्य करता है। प्राण निकलने पर मृत्यु हो जाती है। अतः प्राण ही आयु है, प्राण ही जीवन है।

3. स्थूल शरीर में :

प्राण ही स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण शरीरों में कार्य करता है। एक शरीर से दूसरे शरीर में स्थानान्तारण का कार्य भी किसी न किसी प्राण के माध्यम से होता है। जिव्हा के माध्यम से होने वाला जप स्थूल शरीर का जप कहा जाता है और यह भी प्राण से ही होता है।

4. सूक्ष्म शरीर में :

प्राण ही सूक्ष्म शरीर की एक–एक नस नाड़ी मॉंस मज्जा अस्थि रहित के एक–एक अणु परमाणु को प्राणमय बनाता है। प्राण के द्वारा ही कण्ठ में होने वाला जप दूसरा शरीर, उसको सूक्ष्म शरीर का जप भी कहा जाता है। अँगुष्ठ मात्र, स्वप्नावस्था, शब्द स्पर्श रूप, रस, गंध से अन्तर ज्ञान होता है। प्राण ही सूक्ष्म शरीर के नस–नाड़ी, मॉंस अस्थि रहित वाष्प तत्व तथा 19 सूक्ष्म भावों को भी चेतना प्रदान करता है।

5. कारण शरीर में :

प्राण उसी तरह कारण शरीर जो 19 सूक्ष्म और 16 स्थूल के सूक्ष्म भावों (35 तत्वों) से निर्मित ईश्वरीय विचार कणिकाओं से बना है, को भी चेतन बनाये रखता है। प्राण से ही ह्रदय में होने वाला अति तीव्र जप कारण शरीर का जप कहा गया है तथा स्पन्दन बढ़ जाने

पर नाभि स्थान होकर यह महा कारण बन जाता है। यही पश्यन्ती जप बन जाता है।

6. प्राण की चेतन अवस्था ही समाधि :

अन्तर जगत की समस्त शक्तियाँ जब अपनी मूल अवस्था में पहुँचती है, उसी का नाम प्राण है। प्राण के द्वारा ही मन उच्चतम भूमि में विचरण करता है, जो अति चेतन भूमि है उसी को समाधि कहते हैं।

गुरु पूनम महापर्व

बाबा कानपुरी, ग्राम-सदरपुर, सेक्टर-45, नोएडा, (उ.प्र.)

श्रद्धा के सुमन हम चुन-चुनकर
इक माला बनाकर लाये हैं।
गुरु पूनम का यह महापर्व
हम यहाँ मनाने आये हैं।
है ग्राम अलुपुर धन्य, यहाँ के
धन्य सभी नर-नारी हैं,
माँ धरती जिसको बाल सुलभ
लीला करके दिखलाये हैं।
दुखियों की सुनते टेर सदा
खुद आप दया के सागर हैं,
नट नागर हम पर दया करो
हम शरण आपकी आये हैं।
जिनको अपनों ने ठुकराया,
उन्हें आपने बढ़कर अपनाया।
ले आस यहाँ पर जो आये,
मुँह माँगी मुरादें पाये हैं।
जो आपने योग साधना की,
हम सबको डगर दिखाई है,
उस डगर पर चलकर जीवन को
हम सफल बनाने आये हैं।
यह पावन घड़ी और शुभ दिन
हम सबको जो दिखलाया है,
लखकर छवि पावन मन भावन
खिल हृदय कमल मुसकाये हैं।।
गुरु पूनम का यह महापर्व, हम
यहाँ मनाने आये हैं।।

भावगीत - विनय

श्रीमती शारदा सिसौदिया, इन्दौर (म.प्र.)

योग शक्ति के दाता सुनो प्रभुजी
श्रद्धा भक्ति के दाता सुनो प्रभुजी
रिद्धि सिद्धि के दाता सुनो प्रभुजी
भुक्ति मुक्ति के दाता सुनो प्रभुजी

एक अर्ज हमारी तुम्हारे दरबार में
करबद्ध विनती तुम्हारे से है
तुम्हारे चरणों का आशीष हमें चाहिए
तेरी शरणगाह में आये शरण माँगने
तेरी शरण-छाँव मिले तो क्या बात है!
योग शक्ति के दाता सुनो ......

मन मंदिर सजाया तुम्हारे लिए
श्रद्धा-भक्ति का आसन लगाया बड़े प्रेम से
तुम आय विराजो तो फिर क्या बात है!
भ्रम के भँवर में भ्रमित मेरा मन
मोह माया में मन बना बावरा,
मृग तृष्णा में मन कुलाचें भरे
तत्व ज्ञान का पराग मुझे चाहिए
नाते रिश्तों का झूँठा ये संसार है
तुमसे रिश्ता जुड़े तो फिर क्या बात है!
योग शक्ति के दाता सुनो ......

संसार सागर में जलचर घनेरे
भयाक्रांत मन को यो घेरे
चहुँओर अंधेरा ही अंधेरा दीखे
तुम हाथ थाम लो तो फिर क्या बात है
मोहन की मोहिनी चितवन में बँधा मेरा मन
चन्द्र की शीतल किरण मिले तो क्या बात है!
योग शक्ति के दाता सुनो ......

अंतर द्वंद में खोया मेरा मन
अनहद नाद जगा दो तो क्या बात है!
जीवन की संध्या बेला में
जीवन नैया फँसी मझधार में
तुमसे किनारा मिले तो क्या बात है
नैया पार लगा दो तो क्या बात है?

श्री गुरु चरणों में – गिरिजेश नन्दन शर्मा

प्रेषक : केशव उपाध्याय

बिहार प्रान्त अन्तर्गत जहानाबाद कस्बे के हमारे एक गुरुभाई का नाम श्री गिरिजेश नन्दन शर्मा है। आप विश्वविद्यालय के प्रोफेसर के पद से सेवा निवृत्त हुए हैं तथा इस समय आप की उम्र लगभग पचहत्तर साल है। आराध्यदेव की करुणा कृपा से ये अभी भी स्वस्थ एवं प्रसन्नचित्त हैं। आप की धर्म परायणा धर्मपत्नि का नाम श्रीमती राधारमणी देवी था एवं उनकी जीवन ज्योति अनाथनाथ के अखण्ड ज्योति में सन् उन्नीस सौ अन्ठानवे–निनानवे में समाहित हो गयी। इनकी बड़ी बच्ची का नाम नीलम है तथा वह बाल बच्चों वाली है। उसके पतिदेव किसी सरकारी विभाग की नौकरी में कार्यरत हैं। इनके एक पुत्र श्री शैलेश नन्दन जी, इनके द्वारा स्थापित विद्यालय के प्रबन्धक, संचालक तथा प्रधानाचार्य हैं तथा दूसरे सुपुत्र श्री राजीव नन्दन जी, वकालत पेशे में एडवोकेट हैं। इन पर श्री गुरुदेव भगवान की अपार कृपा है तथा इनका सांसारिक कार्यक्रम बहुत ही अच्छी प्रकार से चल रहा है। इनके श्री गुरुदेव भगवान के चरण–शरण में आने की घटना का रहस्य श्री गुरुदेव भगवान की अहैतुकी कृपा कहा जाय या अभिष्ट वरदान प्राप्ति दोनों अर्थों में सत्य है। उस अहैतुकी कृपा या वरदान का वर्णन निम्न प्रकार है।

सन् उन्नीस सौ इकहत्तर में, आदरणीय भाई श्री गिरिजेश नन्दन शर्मा जी के एक मित्र के मित्र पर श्री आराध्यदेव जी की वरदायिनी कृपा हुई, जो पेशे से वकील थे। इस वकील साहब की शादी हुये, वर्षों बीत गये थे परंतु इन्हें कोई सन्तान नहीं थी। बेचारे वकील साहब पुत्र की लालसा में कोई भी योग्य डॉक्टर, वैद्य, हकीम, फकीर या तान्त्रिक नहीं छोड़े थे, जहाँ इन्होंने सिर न झुकाया हो अथवा अपना श्रम व धन न गवाँया हो, परन्तु कहीं से भी इन्हें कामयाबी हासिल नहीं हुई। अन्त में हमारे एक गुरुभाई से दैव वशात् मुलाकात हो गयी। श्री वकील साहब का उदास एवं निराश चेहरा देखकर, हमारे गुरुभाई ने कहा कि क्या बात है वकील साहब। आज आप हमें दुःखी दिखलायी दे रहे हैं। श्री वकील साहब ने अपनी पूरी व्यथा कथा सविस्तार हमारे आदरणीय गुरुभाई को सविस्तार सुनायी। उनकी बातों को धैर्य से सुनने के बाद, हमारे इस गुरुभाई ने श्री आराध्यदेव जी के सम्बन्ध में बताई एवं यह भी श्री गुरु प्रेम में आश्वासन दे दिया कि इस दरबार से कोई खाली नहीं जाता है। उस गुरुभाई ने श्री आराध्यदेव जी का उस समय का पता भी लिखकर दे दिया एवं कहा कि इस पते पर अपनी पत्नी के साथ चले जाओ एवं वहीं प्रार्थना करो। वकील साहब को हमारे गुरुभाई की बातों पर विश्वास नहीं हो रहा था। हमारे गुरुभाई ने कहा कि एक बार श्री चरणों में जाकर तो देखो। आखिर थका–हारा व्यक्ति

करता ही क्या। वह अपनी पत्नी के साथ श्री चरणों में पहुँच ही गया एवं दोनों ने प्रणाम निवेदित किया। अनाथनाथ ने अपने श्री मुख से पूछा कि कहो लल्ला! कैसे आना हुआ। श्री वकील ने बड़े ही विनीत भाव से अपनी व्यथा श्री चरणों में निवेदित किया। करूणा एवं दयालुता की प्रतिमूर्ति अनाथनाथ हमारे आप के आराध्यदेव जी ने बड़े ही प्रेम से सुना एवं अपने मुखारविन्द से कहा कि तुम लोग काफी थक गये हो, पहले जाकर भोजनालय में भोजन करो और आराम करो। सवेरे तुम्हारी प्रार्थना पर विचार कर प्रसाद दिया जायेगा। इस दम्पत्ति को यह बात उस समय अच्छी नहीं लगी, परन्तु अभीष्ट की प्रतिपूर्ति हेतु ये दम्पत्ति आराध्यदेव जी की आज्ञा का पालन किये।

दूसरे दिन प्रातःकाल स्नानादि से निवृत्त होकर ये दम्पति श्री चरणों में प्रणाम निवेदित किये। आज आराध्यदेव ने उन्हें पुत्र प्राप्ति हेतु सप्रेम प्रसाद दिया एवं कहा कि श्री प्रभु जी की कृपा होगी एवं तुम दोनों की कामना की पूर्ति होगी। कहा गया है कि :

सन्त वचन पलटे नहीं, पलट जाय ब्रह्मांड

श्री सद्गुरुदेव की बात अप्रभावी हो, ऐसा हो ही नहीं सकता। एक वर्ष के अन्दर ही इस दम्पत्ति को पुत्र–रत्न की प्राप्ति हुई। अशौच (इकतालिस दिन) का समय समाप्त होने के बाद श्री वकील दम्पति अपने नवजात शिशु के साथ, श्री चरणों में जाकर साष्टांग प्रणाम निवेदित किये एवं अत्यन्त श्रद्धा एवं विनीत भाव से पूजा प्रार्थना किये एवं आराध्यदेव के इस उपकार के लिए बार–बार कृतज्ञता प्रकट किये। वहाँ से अमोघ प्रसाद प्राप्त कर लौटने के बाद खूब उमंग एवं उत्साह के साथ नवजात शिशु का जन्मोत्सव मनाये। आसपास के इलाके के प्राणियों के लिए यह घटना ईश्वरीय वरदान के समान थी और इससे श्री आराध्यदेव की यौगिक शक्ति का खूब प्रचार एवं प्रसार हुआ एवं उसके बाद कई बड़ी–बड़ी सांसारिक हस्तियों ने श्री गुरु चरणों में सप्रेम–श्रद्धाभाव से अपने सिर झुकाये। कर्ण परम्परा से यह कृपा आदरणीय भाई श्री गिरिजेश नन्दन जी के पास पहुँच गयी, इस कृपा से उनके मानस पटल पर अतिरेक श्रद्धा पैदा कर दिया। भाई श्री गिरिजेश नन्दन जी, श्री गुरुदेव भगवान का यह कृपा प्रसंग सुनने श्री वकील साहब के घर गये एवं उनसे पूरा कृपा वर्णन सप्रेम सविस्तार सुना। उसके बाद श्री गुरुदेव भगवान का पत्राचार का पता नोट किये। अपने घर पहुँच कर उन्होंने श्री गुरुदेव भगवान को एक पत्र लिख कर पोस्ट बॉक्स में डाल दिया। पत्र में इन्होंने अपनी घरेलू परिस्थितियों एवं अपनी नौकरी का सन्दर्भ देकर आपने श्री गुरुदेव से यह प्रार्थना की थी कि पेशे से शिक्षक हूँ, अतः यदि किसी छुट्टी में आपके दर्शन हमें मिल जायें तो बड़ी कृपा होगी, क्योंकि हमें छुट्टी नहीं लेनी पड़ेगी। आपके दर्शनों की हमें बड़ी अभिलाषा है।

पत्र पाते ही आराध्यदेव जी ने पत्र का आशीर्वादात्मक उत्तर दिया एवं उस पत्र में

अपने अगले दो महिनों के अग्रिम योग प्रचार कार्यक्रमों का वर्णन पूर्ण पता के साथ लिया था एवं लिखवाया था कि तुम्हें जहाँ सुविधा हो एवं तुम्हारी छुट्टी का नुकसान न हो तुम वहीं चले आओ। पत्र पाकर श्री गिरिजेश नन्दन जी को आध्यात्मिक आनन्द हुआ और अब इनके मन में श्री गुरुदर्शन की अभिलाषा बलवती होती गयी। इनका मन श्री गुरुदर्शन के लिए धीरे–धीरे व्यग्र होता चला गया। आदरणीय गुरुभाई श्री गिरिजेश नन्दन जी ने सर्व प्रथम सन् उन्नीस सौ इकहत्तर में आनन्दकन्द श्री गुरुदेव भगवान का स्थूल दर्शन लाभ प्राप्त किया था। अपने नजदीकी स्टेशन से यह पहली यात्रा हावड़ा कालका मेल से किये थे। अक्टूबर का महिना था। ट्रेन करीब पाँच बजे सायंकाल के आस–पास टुण्डला स्टेशन पहुँच गयी। टुण्डला जंक्शन उतरने पर इन्होंने एक कुली से पूछा कि सवाई कहा है? उसने मजाक उड़ाते हुए कहा कि सवाई–माधोपुर, यहाँ कहाँ ढूढ़ रहे हो, वह तो राजस्थान प्रान्त में है। इन्हें बहुत निराशा महसूस हुई एवं ये उदास से हो गये। इसके बाद इन्होंने प्लेटफार्म पर खड़े एक आदमी से पूछा कि भाई साहब सवाई गाँव कहा है? उस अधेड़ उम्र के सज्जन व्यक्ति ने पूछा कि आप को शायद श्री सवाई धाम जाना है। उस धाम पर जाने का रास्ता इस प्रकार है कि आप बस या टैम्पू द्वारा एत्मादपुर जाइये। वहाँ से लगभग एक मील की दूरी पर सवाई ग्राम स्थित है और उसी ग्राम में 'श्री सवाई वाले बाबा' ने एक गुफा बनाई है जो सवाई धाम के नाम से जाना जाता है। उसने यह भी कहा कि अब अन्धेरा हो चला है और आपको वहाँ पहुँचने में परेशानी होगी। उस सज्जन व्यक्ति ने कहा कि आज आप हमारे साथ चलिए, हमारे घर रात्रि निवास करिये, सवेरे मैं आपको श्री सवाई आश्रम पहुँचाने की मुकम्मल व्यवस्था बना दूँगा। आदरणीय भाई जी उस व्यक्ति के साथ गये, रात्रि निवास उसके घर किये तथा उसके द्वारा प्रातः काल ही श्री सवाई धाम पहुँचाये गये। इस प्रकार प्रथम बार इन्होंने देव वन्दित श्री सिद्धगुफा तथा त्रिलोकीनाथ हमारे गुरुदेव भगवान का दर्शन लाभ अर्जित किया।

श्री सिद्धगुफा सवाई धाम जाने का सौभाग्य इन्हे सन् उन्नीस सौ तिहत्तर की गुरु पूर्णिमा पर मिला। इस बार इनके साथ पटना के दो गुरुभाई और थे। इस बार इन लोगों ने विक्रम शिला एक्सप्रेस से यात्रा की। विक्रमशिला–एक्सप्रेस अनाथ नाथ की कृपा से मितावली स्टेशन के ठीक सामने रुक गयी। ये लोग यहीं उतर गये एवं योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्धगुफा सवाई धाम पहुँच कर, स्नानादि से निवृत्त होकर, आराध्यदेव श्री सद्गुरु देव भगवान तथा श्री सिद्धगुफा का दर्शन कर उसके पवित्र एवं रोग निवारक रज का सेवन किये।

आदरणीय भाई श्री गिरिजेश नन्दन जी की आराध्यदेव जी ने कई बार रक्षा की है, जिसमें एक बहुत ही विलक्षण है और उसका वर्णन यहाँ किया जा रहा है। यह अपने घर

जहानाबाद से भागलपुर गये थे। भागलपुर से फिर पटना गये एवं पटना से ट्रेन बदलकर इन्हें जहानाबाद वाली ट्रेन पकड़ना था। करीब–करीब मध्यरात्रि का समय था, ट्रेन से उतरते समय ये प्लेटफार्म पर पैर नहीं रख पाये एवं ये प्लेटफार्म एवं रेल गाड़ी के बीच गिर गये। आराध्यदेव ने इन्हें कैसे रखा, यह बात तो वह करूणा सागर ही जानें। उसके चन्द मिनटों बाद, पूरी ट्रेन निकल गयी और प्रत्यक्षदर्शी लोग जो सोच रहे थे कि एक आदमी ट्रेन के नीचे गिरकर मर गया। यह देखकर महान आश्चर्य में पड़ गये कि वही गिरा व्यक्ति प्लेटफार्म पर फिर चढ़ता है कि उसे खरोंच तक भी नहीं आयी थी। आदरणीय भाई जी ने बतलाया कि इन्हें यह अनुभव हो रहा था कि वे श्री गुरूदेव की गोदी में बैठे हुए हैं। यह घटना सन् उन्नीस सौ निन्यानवे की है। इसके पूर्व ये सन् उन्नीस सौ चौरानवे में सेवामुक्त हो चुके थे।

आपकी धर्म परायणा अर्धांगिनी जिनका नाम श्रीमती राधामनी देवी था, जिनकी जीवन ज्योति सन् उन्नीस सौ अठानवे में, आराध्यदेव के अखण्ड ज्योति में समाहित हो गयी। शेष पूरा परिवार आनन्द के साथ सुखमय जीवन व्यतीत कर रहा है।

यह भी बताना समीचीन होगा कि आदरणीय श्री गिरिजेश नन्दन जी, श्री प्रभु परिवार से बहुत लोगों को जोड़ने का माध्यम बने; यह उनके ऊपर श्री प्रभु की महान कृपा ही कही जायेगी। अन्त में लेख को यहीं विश्रामित करते हुए, सर्व समर्थ श्री गुरूदेव भगवान के युगल कमल चरणों में बारम्बार सादर साष्टांग प्रणाम अर्पित है। वास्तविकता तो यह है :

गुरुदेव की कृपा से, सब कार्य हो रहा है।
करते हैं मेरे प्रभु जी, मेरा नाम हो रहा है।।

न देवो विद्यते काष्ठे न पाषाणे न मृन्मये।
भावे हि विद्यते देवस्तस्माद् भावो हि कारणम्।।

- चाणक्य नीति

वह परमपिता जगदीश्वर लक्कड़, पत्थर और मिट्टी की मूर्ति में (व्याप्त होते हुए भी) उसके लिए नहीं है जिसके मन में परमात्मा का भाव नहीं है। परमात्मा भाव में विद्यमान होता है और जहाँ भाव करें वहीं मौजूद हो जाता है।

श्री कामाख्या यात्रा में सत्संग लाभ

डॉ. विजय सिंह

ट्रेन जंगल के बीच काफी देर से रुकी है। किसी ने बताया पटरी पर पेड़ गिरा है। दोनो ओर पटरी के घना जंगल फैला हुआ था। मैंने बातचीत को बढ़ाते हुए उनसे कहा– योग बनी के जंगलों में हमारे परमाराध्य योगेश्वर श्री महाप्रभु रामलाल जी एक योग साधक विरक्त महात्मा को आविर्भूत होकर कृपा किया था और बोले आगे कभी हमारे शिष्य के दर्शन तुम्हें नेपाल में होंगे उससे कृपा प्रसाद ले लेना। यह घटना 1952 ई. की थी। काल व्यतीत होता गया सन् 1968 में भारत के राजदूत जो ने ाल में थे वे मेरे सद्गुरु के अनुरक्त भक्तों में थे। उन्होंने सद्गुरु भगवान को नेपाल काठ ाण्डू आमंत्रित किया। श्री सद्गुरु भगवान अपने अनेक ब्रह्मचारियों एवं श्रीमत शिष्यों के र थ नेपाल गये। गोशाला धर्मशाला में श्री सद्गुरु जी के साथ गये सत्संगी निवास किये। एक दिन वागमति की धारा के कि ारे–किनारे भ्रमण करते हुए सद्गुरु भगवान एवं सभी पहाड़ पर ऊपर की ओर चलते जा रहे थे। पहाड़ी पगडंडी पर सम्भल कर लोग चल रहे थे। तभी लोगों ने देखा एक जटा–जूट वेष्टित नग्न महात्मा रास्ते में प्रकट हो वीरासन से करबद्ध प्रणाम करता बैठा है। श्री सतगुरु जी छड़ी टेक कर थोड़ा झुक कर बोले – महात्मन! क्या बात है? अत्यन्त श्रद्धावनत हो महात्मा ने कहा – प्रभो! प्रसाद चाहिए। श्री सद्गुरु जी ने कहा – धर्मशाला आ जाना वहीं प्रसाद दूंगा।

वह महात्मा पहाड़ी के ढाल पर द्रुत गति से नीचे उतरता हुआ वृक्षों के ओट में अदृश्य हो गया। श्री सद्गुरु जी पुनः ऊपर सभी के साथ मंथर गति से भ्रमण करके थोड़ी देर बाद लौटकर िवास स्थल पर आ गये। दिन में दूतावास की कई गाड़ियाँ आ जातीं और सभी को काठमाण्डू के चर्चित दर्शनीय स्थलों को दिखाने ले जाती। श्री सद्गुरु सानिध्य में भ्रमण का एक अनोखा आनन्द मिलता रहा है।

उसी दिन रात्रि को जब आरती समाप्त हुआ। लोग श्री सद्गुरु भगवान द्वारा दिये जा रहे प्रसाद को लेकर प्रणाम करके लौटे तो देखा हाल में सबसे पीछे वही महात्मा करबद्ध खड़े हैं। महात्मन्! आइये श्री सद्गुरु जी ने उन्हें आदर पूर्वक प्रसाद देने के लिए पास बुलाये और मिठाई का एक डिब्बा उनकी ओर बढ़ाया। महात्मा पीछे दो कदम हट कर बोले यह प्रसाद नहीं। हमें तो पुष्प प्रसाद दीजिए। जो आप कृपा कर अपने शिष्यों को देते हैं।

ब्र. हरिभक्त चैतन्य श्री सद्गुरु के प्रिय शिष्यों में से वहाँ मौजूद थे। उन्होंने कहा – महात्मा जी! जिस स्वरूप की अभी हम लोगों ने आरती की है क्या आप उनका नाम जानते हैं। महात्मा ने उनकी ओर उपेक्षा से देखकर बोले–जानता हूँ। विनोद प्रिय सद्गुरु देव जी ने हँसते

हुए कहा – भला! फिर नाम बताते क्यों नहीं? विनम्रता पूर्वक महात्मा ने कहा कि प्रभो! जिस समय योगवनी में साधना कर रहा था सन् 1952 में एक दिन ज्योतिर्मय ज्योति से योगियों के परमाश्रय श्री महाप्रभु रामलाल जी प्रकट होकर मुझे कृतार्थ किया और साधना के उच्च सोपान पर प्रतिष्ठित कर बोले आगे जब हमारा बच्चा (श्री सद्गुरु भगवान का नाम लेकर) नेपाल आयेगा तो उससे प्रसाद माँगना। उससे तुम्हारा सर्व मनोरथ पूर्ण होगा। सभी सत्संगी इस प्रत्यक्ष दिव्य घटना से आवाविभूत हो रहे थे। तभी सद्गुरु भगवान ने गुलाब की पंखुड़ियों में कृपाशक्ति संचरित कर उस महात्मा को दिये। वह ग्रहण कर जब लौटने को हुआ तब पुनः लीलाधारी सद्गुरु जेब से कुछ नोट निकाल कर महात्मा को दिये वह नहीं ले रहे थे परंतु श्री सद्गुरु जी ने कहा रख लो काम देगा। महात्मा नोटों को लेकर उल्टे पैर हाल के पीछे लौटे और बार–बार प्रणाम करके सिढ़ियों से नीचे उतर कर कहाँ अदृश्य हुए पता नहीं चला। क्योंकि भोजनालय के ब्रह्मचारी को श्री प्रभुजी ने कहा देखो महात्मा को रोक कर भोजन करा देना। परंतु ब्रह्मचारी द्रुति गति से पीछा किये। सीढ़ियों पर उतरता देखा। परंतु पीछे से आवाज देने के पूर्व ही महात्मा अदृश्य हो गये।

महानुभाव परिपूर्ण एकाग्रता से मेरे इस कथोप–कथन को सुनकर भाव विभोर हो रहे थे। थोड़े अन्तराल से बोले–योगियों की लीला वैचित्र्य अचिन्तनीय हुआ करती है। योगेश्वर की तो बात ही क्या कहना?

मन की गति है अटपटी, गुरु बिन लखे न कोय।

जो मन की खटपट मिटे, चटपट दर्शन होय।।

सद्गुरु साधक की साधना में आने वाले रुकावटों को देखकर उसके निवारण हेतु उपाय कर देते हैं। जैसे आपने योगवनी वाले महात्मा की घटना बताई। 1952 में सद्गुरु कृपा आपके दादा गुरुदेव के नाम रूप से और पुनः सन् 1962 में आपके गुरुदेव के नाम रूप से उस महात्मा को कृपा प्रसाद मिला। सब सद्गुरु सत्ता एक ही परम सत्ता है। उस गुरुतत्व का अवतरण देश–कालानुसार नाना नाम–रूपों में हुआ करता है। अपने संस्कारी आत्माओं को योगारूढ़ कराने हेतु। भवसागर से ठीक–ठीक पार लग जावें।

मैंने उनकी बातों का अनुमोदन किया। मौन थोड़ी देर हम दोनों के बीच व्याप्त रहा।

थोड़ी देर बाद मैंने पूछा – भला यह योग की सिद्धि कब पूर्णता से प्राप्त होता है? क्योंकि स्वयं जगदात्मा भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को आदेश देते हुए कहते हैं 'तस्माद्योगी भवार्जुन'। हे अर्जुन योगी बन। हमने कहा – एक जगह उद्धव को उपदेश देते हुए योगेश्वर श्री कृष्ण ने कहा है – अपरमता पयान योगी। जगत उत्पत्ति नाशनों भवति। श्री मान् ईश्वरोत्तर यथेव ही।

अर्थात् – पूर्ण योगी संसार की उत्पत्ति तथा प्रलय करने में समर्थवान है और वह

ईश्वर में ईश्वर रूप ही है। वह मेरा ही स्वरूप है।

महानुभाव प्रमुदित भाव से मुझे देखते हुए बोले – यह सब सच तो है ही।

मैंने बात का विस्तार करते हुए कहा – मेरे सद्गुरु देव जी कहा करते थे। हिमालय में ऐसे योगी हैं जो अपने संकल्प से स्वयं की सृष्टि रच कर समाधि में लीन रहते हैं। सैंकड़ों वर्षों में समाधि से उठने पर उस सृष्टि को अपने में समाहित कर लेते हैं। वे अपने सृष्टि में स्त्री, पुरुष, फल–फूल सभी कुछ बाह्यी सृष्टि से भिन्न रचते हैं। उनकी रचना, जरा–मृत्यु, रोग–शोक से रहित होती है।

श्री सद्गुरु भगवान ऋषियों का कथन कहते –

यस्मिन देशे वसेद्योगी, ध्यान योग विचक्षणः।
सो अपि देशो भवेत पूतः, किम् पुनः तत्बान्धवाः।।

बड़ी तन्मयता से महानुभाव हमारे द्वारा श्री सदगुरु महिमा एवं योग की महत्ता को सुनते रहे। सोचते हुए बोले –योगेश्वरों के कृपा संचार का रहस्य कुण्डलिनी जागरण से है। ऐसा मुझे विश्वास है कि सद्गुरु कृपा से उन पराजगदम्बा आद्या शक्ति कुल कुण्डलिनी आप के अन्दर प्रसन्न हैं।

मैंने पूछा – तत्वतः यह शक्ति शरीर में क्या है? उन्होंने कहा – पराजीवनी शक्ति ही कुण्डलिनी है। एक तरह से प्राण शक्ति को ही जीवनी शक्ति कहते हैं। प्राण शक्ति के केन्द्रीभूत शक्ति को ही कुण्डलिनी कहा गया है। श्री सद्गुरु की कृपा से, हठयोग से, भावयोग से, मंत्र योग से जब यह सुषम्ना नाड़ी में प्रवेश कर ऊर्ध्व गति होती है। षट चक्र भेदन करते हुए मस्तिष्क स्थित सहस्त्रार में ले जायें पर प्रकृति जयता, अणमादिक, सिद्धियाँ, कालजयता के साथ ब्रह्म ऐक्यता के साथ, योग सिद्धि प्राप्त होता है।

ब्रह्माण्ड में जो आद्या शक्ति का दृश्य प्रपंच फैला हुआ है उसी प्रकार वही आद्या शक्ति कुण्डलिनी रूप में व्यष्टि के अन्दर मूलाधार में विराजमान हैं। सर्व साधारण में यह शक्ति सुशुप्त रहा करती है। सद्गुरु कृपा एवं साधना से जाग्रत होकर यह चक्रों का भेदन करती है। ज्यों–ज्यों चक्र भेदन साधक करता है। उसे पंच महाभूतों का साक्षात्कार तथा संयम द्वारा अधिकार प्राप्त होता है।

समष्टि में यह शक्ति ब्रह्म में लीन रहती है। तब यह पराशक्ति नाम वाली है। इस शक्ति के चलन–कलन से ब्रह्मा, विष्णु, रूद्र एवं इनकी शक्तियों का रूप जगत की सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय किया करती है। सत्व, रज एवं तम ये तीन गुणों से प्रभावित प्रकृति भी इसी शक्ति के कारण है।

थोड़े देर मौन रहकर वे मुझे तन्मयता से सुनते देखकर पुनः बोले– सतोगुण की अधिकता से मनुष्य शुभ कर्म धर्म पुण्यार्जन आदि करता है जिससे उसे सुख ऐश्वर्य तथा

उत्तम स्वर्गादिक लोक की प्राप्ति होती है। परंतु यह सुख भी स्वर्ण की बेड़ियाँ हैं। यह भी बन्धन का ही कारक है। स्वर्ग में भी दूसरों का अधिक ऐश्वर्य देखकर जीव मानस दुःख से कातर हो उठता है।

रजोगुण के प्रभाव से व्यक्ति लोभ, मोह, विषय वासनाओं में पड़कर महाअन्ध प्रमाद से घिरकर मृत्यु के समय कष्ट को प्राप्त होता है। इससे भी घोर दशा तमोगुणी जीवों का होता है। अज्ञान से आच्छादित यह दुःख रूप ही होता है। ट्रेन किसी स्टेशन के प्लेट फार्म पर रुकी। इससे वार्तालाप में थोड़ा व्यवधान हुआ।

क्रमशः

सूचना

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र सवांई, एत्मादपुर (आगरा) पर ***गुरु पूर्णिमा महोत्सव*** दिनांक 15 जुलाई, दिन शुक्रवार को बहुत ही धूमधाम से मनाया जा रहा है। सभी गुरु भाई-बहिनों से निवेदन है कि प्रभुजी के धाम में पहुँचकर उत्सव का आनन्द लें और पुण्य के भागी बनें।

निवेदक

श्री सिद्धगुफा परिवार

श्री गीतामृत पदावली

प्रेषक : डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी, गोरखपुर

(गतांक से आगे)

सुन्दर गन्ध धरा में मैं हूँ तथा अनल में मैं हूँ ताप।
जीवन हूँ मैं सब जीवों में तपस्वियों का तप हूँ आप।।9।।

जीवमात्र का कारण अर्जुन एक मुझे ही अब तू जान।
तेजस्वी का तेज, और तू बुद्धिमानों की मान10।।

बलवानों का बल मैं अर्जुन ! जिसमें नहीं काम औ राग।
और कामना मैं जीवों की, जिसमें नहीं धर्म का त्याग।।11।।

मुझसे हैं उत्पन्न धनंजय ! सत-रज-तम के भाव सभी।
वे मुझमें हैं, पर यह जानो, मैं तो उनमें नहीं कभी।।12।।

इन्हीं गुणों के भावों से ही, मोहित पूर्ण जगत् है तात।
परे गुणों से अविनाशी मैं, अतः न होता इनको ज्ञात।।13।।

त्रिगुणमयी मम माया दैवी, निःसंदेह बहुत दुष्कर।
जो आता आश्रम में मेरे, बिन प्रयास वह जाता तर।।14।।

माया से हैं ज्ञान-रहित जो, भाव आसुरी अपनाते।
मूढ़, कुकर्मी, पुरुष नराधम, नहीं कभी मुझको पाते।।15।।

मेरा पूजन करते अर्जुन! चार भाँति के पुरुष विशेष।
अर्थार्थी, जिज्ञासु पुरुष, ज्ञानी जन तथा जिन्हें कुछ क्लेश।।16।।

सर्वोत्तम हैं ज्ञानी जन, जो मुझको ही भजता रहता।
मैं अतिशय प्यारा हूँ उसको, वह भी मुझको अति प्यारा।।17।।

सभी भले, पर ज्ञानी मेरा, आत्म-रूप है, मेरा तत्व।।
मुझमें पाता, मुझमें ही रहता अनुरक्त।।18।।

मुझको पा लेता है ज्ञानी, हो जाते जब जन्म अनेक।
दुर्लभ है वह, जो कहता है - 'सब-कुछ वासुदेव है एक'।।19।।

भाँति-भाँति की अभिलाषाओं से, हरा गया है जिनका ज्ञान।
भिन्न-भिन्न देवों को भजते, प्रकृति सुलभ नियमों को मान।।20।।

जिन-जिनके पूजन की इच्छा, भक्त पुरुष मन में रखता।
उन सबमें श्रद्धा हे अर्जुन! मैं ही उसे दिया करता।।21।।

उसका ही वह पूजन करता, उसी भाव में रहकर व्याप्त।
अपने इच्छित भोग विहित वह, उससे ही करता है प्राप्त।।22।।

इन मूढ़ों के ये समस्त फल नाशवान हैं कहलाते।
देव-भक्त ढिंग देवों के, मम भक्त पास मेरे आते।।23।।

सर्वोत्तम अव्यक्त, अमर मम परम भाव का जिन्हें न ज्ञान।
मुझ अव्यक्त सनातन को ही, व्यक्त मन्दमति जन लेते मान।।24।।

निज माया से ढका हुआ हूँ, जान न सकते मुझे सभी।
मूढ़ जनों को ज्ञात नहीं-मैं जन्म-रहित हूँ, अविनाशी भी।।25।।

भूत-मात्र जो थे, हैं , होंगे, सभी विदित हैं मुझको तात।
किन्तु सुनो हे वीर धनंजय! नहीं किसी को मैं हूँ ज्ञात।।26।।

इच्छा-द्वेष-जनित होता है, सुख दुःख जैसे द्वन्द महान।
जीव उसी से मोहित होते, अपहृत होता उनका ज्ञान।।27।।

पुण्य कर्मकर्त्ता जन, जिनके हुआ सभी पापों का अन्त।
द्वन्द्व-मोह तज भजते मुझको, दृढ़व्रत होकर वे ही सन्त।।28।।

जरा-मरण से छुटने का जो, यत्न मेरे आश्रित करते।
सभी कर्म, अध्यात्म, ब्रह्म का उचित ज्ञान हैं वो रखते।।29।।

अधिभूत, दैव व यज्ञयुत जो जन मुझे हैं जानते।
अंतिम समय भी मुक्त चिंतक ही मुझे पहचानते।।30।।

('श्रीगीतामृत-पदावली' का ज्ञान-विज्ञान-योग नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण)

(शेष अगले अंक में)

विनाश के कारणों से बचें

यूं उत्पत्ति और क्षय, विकास और विनाश, जन्म और मृत्यु, उन्नति और पतन तथा सृजन और विध्वंस - ये सब एक ही सिक्के के दो पहलुओं के समान हैं यानी सृष्टि-नियमों के अन्तर्गत इन दोनों स्थितियों का होना प्राकृतिक रूप से अनिवार्य नियम है। इस नियम को बदला नहीं जा सकता, भंग नहीं किया जा सकता, यहां तक कि इसकी अवहेलना या उपेक्षा भी नहीं की जा सकती। प्रकृति प्रतिपल परिवर्तन करती रहती है, सृजन और विनाश करती रहती है, वृद्धि और क्षय करती रहती है, इस क्रम को तो नहीं रोका जा सकता लेकिन जो विनाश और क्षय हम अपने गलत कर्मों से, गलत आचरण से करते हैं उसे रोका जा सकता है। उन कारणों से बचा जा सकता है जो हमारे जीवन में विनाशकारी साबित होते हों। ऐसे कुछ कारणों पर जरा विचार करें।

यदि शासन के मन्त्री एवं अधिकारी लालची, धूर्त और ऐयाश हों तो शासन व्यवस्था का नाश होता है, शासन की नीति अस्थिर, बार-बार बदलने वाली और शोषण करने वाली हो तो प्रजा की सुख- समृद्धि का नाश होता है, रईसों की संगति में संयम और नियम का नाश होता है, पुत्र कपूत साबित हो तो कुल की प्रतिष्ठा का नाश होता है, दुष्ट स्वामी की नौकरी करने से शील का नाश होता है, शराब पीने से लज्जा और मर्यादा का नाश होता है। इसी तरह स्वयं देखभाल न करने से खेती और व्यवसाय का, बराबर सम्पर्क न रखने से प्रीति का, लोभ करने से सम्मान का, क्रोध से विवेक का, ईर्ष्या से स्नेह और झूठ से विश्वास का नाश होता है। अहंकार से यश, चिन्ता से शरीर और अभिमान से प्रतिष्ठा का नाश होता है। अधिक भोगविलास से स्वास्थ्य, बुढ़ापे से सौन्दर्य और निकम्मेपन से प्रारब्ध का नाश होता है। ये नाश के अलग-अलग कारण हैं पर अधर्माचरण करने से तो मनुष्य के पूरे जीवन का ही नाश हो जाता है।

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

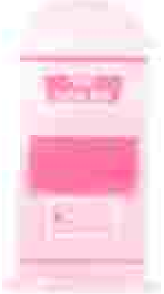

उत्पाद (ब्रांड) को बाजार में स्थापित करने के लिए एक अनोखी एवं प्रभावशाली योजना -

विभिन्न माध्यमों से विज्ञापन की सुविधा

1. [illegible]
2. [illegible]
3. [illegible] रु. 1000 [illegible] 100.00 [illegible]
4. [illegible]
5. [illegible] 100/- [illegible]
6. [illegible] 400/-
7. [illegible] 25 पैसे मात्र।

SIDHYOG Postal Regd. No.: Ag. 192008-11

JULY 2011

प्रेषक कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक पत्रिका

श्री सिद्धयोग योग प्रशिक्षण केन्द्र

बिचपुरी (राजपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER

BOOK-POST

श्री/सुश्री

[illegible] मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. [illegible] शर्मा के लिए [illegible] आगरा-3 [illegible] योग प्रशिक्षण केन्द्र, बिचपुरी (राजपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14086. सम्पादक : आचार्य ब. (डॉ.) [illegible] शर्मा